१

आनन्दकानने ह्यस्मिन

तुलसीजङ्गमस्तरु

कवित मञ्जरी ह्यस्मिन्

राम भ्रमर भूषिता

भक्तानां प्रवरो सुशीलविमल

माधुर्ये पूर्णाकृति।

रामरूपमलजोतिरवसन्ते

ते ध्यान्यन् सदा सर्वदा

भाति राग सुरञ्जितो प्रतिदि

गायन्ति दिव्यं कु...

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प
६३

प
३६

ते वन्द्ये तुलसी सदैव
रघुवीर
रसना रामामृतं वा
सीतायाश्च रामस्य च पदं
नित्यश:
लीलामृतं पानकरोति
नित्य
धन्योऽसि भक्तोऽसि च
अनन्य भक्ति
प्रेसद्व रामं कुज
स्व.जी का रज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"विद्यावतां भागवते परीक्षा"

अथ

महर्षिवेदव्यासनिर्मितश्रीमद्भागवतान्तर्गत-
दशमस्कन्धान्तर्गता

वेदस्तुतिः।

काशीस्थराजकीयसंस्कृतविद्यालये (कालेज)
श्रीयुतपण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिणां सन्नि-
धावधिगतन्यायादिशास्त्रेण पश्चिमोत्तरदे-
शीय मुरादाबादवास्तव्येन श्रीयुतगौड़वं-
शावतंसभोलानाथतनयेन पण्डितराम-
स्वरूपशर्म्मणा विरचितया सान्वय-
भाषाटीकयासमलङ्कृता

सैव

प्रथमावृत्तौ

श्रीयुत भगीरथात्मज हरिप्रसादेन
स्वायत्तीकृतसर्वाधिकारपुरःसरं
मुम्बय्याम्
"गणपत कृष्णाजी" मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशिता।
संवत १९१७ सन १८९५।

इस पुस्तकका सब प्रकारका रजिस्टरी हक्क प्रकाशकने स्वाधीन रक्खा है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहोरसिका भुवि भावुकाः॥ १

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवेदन।

भक्तहितकारी परमदयालु ईश्वर के कृपाकटाक्ष से मुझ को बाल्यावस्था सेही भगवद्भक्त महात्मा पुरुषों का सत्सङ्ग रहा, अतएव अनेक बार श्रीमद्भागवत् के श्रवण का सुअवसर मिला और स्वयं भी यथाशक्ति अवलोकन किया और विचारा इस कारण मेरे चित्तको दृढ़ विश्वास है कि श्रीमद्भागवत् का प्रतिअक्षर भगवद्भक्ति के उपदेश और ईश्वर के गुणकीर्तन से परिपूर्ण है। परन्तु दशमस्कन्ध में विशेषतः भगवत् चरित्रों का वर्णन है। तत्रापि ८७ वें अध्याय अर्थात् वेदस्तुति में तो चारों वेद अष्टादश पुराण और षट् शास्त्रों के सारभूत आत्मतत्त्व का भली प्रकार विचार किया है सो विद्यावान् हरिभक्तों को विदितही है, परन्तु साधारण पुरुष विद्या का अधिक अभ्यास न होने से इस वेदस्तुति के आनन्द को भली प्रकार नहीं प्राप्त होते हैं इस कारण आबालवृद्ध भगवद्भक्तों के आनन्दार्थ इसको सर्वथा सुगम करने में समर्थ जान मैंने श्रीयुत पण्डित रामस्वरूप जी को इस वेदस्तुति की टीका बनाने को प्रेरणा करी और उन्होंने अतिप्रेमपूर्वक इस विज्ञप्ति को स्वीकार कर अन्वय और अन्वयार्थ तथा तात्पर्य्यार्थ प्रकाशिका भाषा टीका बनाया और मैंने इस टीका को आद्योपान्त यथाशक्ति अवलोकन कर इस व्याख्या को भगवद्भक्तों का परमोपकारक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समझा और सर्वसज्जन भगवद्भक्तों के आनन्दार्थ छपवा-कर प्रसिद्ध किया और भगवद्भक्तोंको समर्पण करी, अब उसहीको द्वितीयावृत्ति श्रीयुतपण्डित हरिप्रसादभगीरथजीने छपवाया है । आशा है कि भगवद्भक्त इसका अवलोकन कर इस परिश्रम को सफल करैंगे और मुझको अनुगृहीत करैंगे ॥

सत्सङ्गाभिलाषी

श्रीयुत शिवलालात्मजो गणेशीलालगुप्तः ।

मुरादाबाद

निवासी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीः

भूमिका

नमो जनकजाजानये ।

"लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते मानुष्य-
मर्थदमनित्यमपीह धीरस्तूर्णं यतेत न पतेदपमृत्यु-
यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतःस्यात् ॥१॥"

इस असार संसार में अनेक योनि हैं जिनमें प्राणियों को नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं और भगवद्भक्ति करने के योग्य यह मनुष्यशरीर अनेक जन्मों के अनन्तर यदि भगवत् की कृपाही होय तब प्राप्त होता है । इस कारण परमदुर्लभ मनुष्यदेह को प्राप्त होकर मुमुक्षु पुरुषों को योग्य है कि जबतक विकराल काल के मुख में न प्राप्त हों तबतक इस संसार सर्प से मुक्त होने का शीघ्रही उपाय करैं । यद्यपि शास्त्रों में ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम वर्णन करे हैं और वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम मेंही विरक्त होकर एकान्त स्थान में असार संसार से मुक्त होनेका उपाय करै इस प्रकार उपदेश किया है परन्तु इस घोर कलिकाल में यथावत् आश्रमों को ग्रहण करना अत्यन्तही कठिन प्रतीत होता है और इसी कारण मनुष्य हीनशक्ति तथा अल्पायु भी होते हैं परन्तु 'भर्तृहरि' इस प्रकार उपदेश करते हैं कि यदि ऐसे समय में भी संसारबन्धन से छूटने की इच्छा होतो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष को योग्य है कि जबतक यह शरीर स्वस्थ रहै औ्छूटने
जबतक वृद्धावस्था नहीं प्राप्त होय तथा इन्द्रियों की शक्ति संस
नष्ट न हो इससे प्रथमही बुद्धिमान् इस असार संसारवन्धनों के
से मुक्त होने का उपाय कर लैं क्योंकि जब गृह जलने लगा।रव
तव कुआ खोदा तौ वह कुआ खोदना निरर्थक ही होता है
है। इस कारण संसारवन्धन से मुक्त होने का उपाय मनु। पर
ष्यों को यथाशक्ति शीघ्रही करना योग्य है। हे भगवद्‌। दास
भक्तो! परमदयालु भक्तहितकारी परमेश्वर प्रेमपूर्वक एकप
वार भी भगवत् नाम उच्चारण करने से प्रसन्न हो जा।र
हैं परन्तु भ्रान्तिकल्पित संसार के पदार्थों को सत्य माननेवाले मुर
यह प्राणी संसारवन्धन से छूटने का उपाय नहीं करे है कि
विचार का विषय है कि प्रतिदिन सूर्य्य उदय होता है अ।से मुक्त
अस्त होता है इसी प्रकार मनुष्यों का अमूल्य आयु न।रूप क
होता चला जाता है और प्राणी अज्ञानवश पुत्र कलत्र दे।कारण
गेह आदि के प्रेम में मग्न होकर इस दुष्प्राप्य समय व।समान
निष्फल खोय देते हैं। यह वार्ता भी प्रसिद्धही है कि य।ना अ
मनुष्य सत्कर्म्मों में तत्पर रहै तौ केवल सौवर्ष मात्र का अ।की नि
यु होता है उसमें भी आधी अवस्था रात्रि में निद्रा लेव।होती
रही व्यतीत हो जाती है। शेष बचे पचास वर्ष उसमें से।सुख व
कुछ काल वालावस्था और वृद्धावस्था में व्यतीत हो जात।को प्र
है केवल युवावस्था शेष रही उसमें भी मनुष्यों को पिता पु।शो! वि
त्रादि वियोग होता है अनेक रोग प्राप्त होते हैं और तृ।वास्तव
ष्णा की अधिकता से दरिद्र से चक्रवर्ती राजा पर्य्यन्त स।संसार
वही पुरुष युवावस्था में अपने २ व्यापारों में आसक्त रह।यों को
हैं इस प्रकार आयु भर मनुष्य नाना प्रकार के क्लेशों को।श्रमको
भोगते हैं। वड़े खेद की वार्ता है तौ भी मनुष्य ससारवन्धन।पाय क

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

औरछूटने का उपाय नहीं करते हैं मुमुक्षु पुरुषों को योग्य है शक्ति संसार को असार जान सत्कर्म्मों में प्रीति करैं और दु-रवन्धनों के संग को त्याग साधु पुरुषों की संगति कर लगारबन्धन से मुक्त होने का उपाय करैं । विचार का वि- होता है कि प्राणी अज्ञानवश स्त्री पुत्रादि के प्रेम मे फँसा हु- परमसुख मानै है परन्तु वास्तव में यह सुख नहीं है कि- दारुण दुःखस्वरूप है क्योंकि प्रेमरूपी बन्धन में बँधा हुआ एकरूप मनमें अनेक मिथ्या सङ्कल्प विकल्प करता रहता है और आयु पूरी होने पर कालरूप हस्ती आनकर उसे अ-ने मुख का ग्रास कर लेता है इस कारण पुरुष को योग्य है कि मिथ्या सङ्कल्प विकल्पों को मन से त्यागकर संसार से मुक्त होने का उपाव करैं क्यौंकि स्त्री पुत्रादि कुटुम्बी पु-रुष कर्म्मफल भोगने के समय सहायक नहीं होते हैं । इस कारण पुत्र कलत्र देह गेह आदि के प्रेम को मृगतृष्णा की समान मिथ्या जानकर संसार से मुक्त होने का उपाव कर-ना अत्यन्तही आवश्यक है । विचार का विषय है कि दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति की इच्छा प्राणीमात्र को होती है । पर खेद का विषय है कि तौभी अज्ञानवश प्राणी सुख की प्राप्ति का एक भी उपाय नहीं करते हैं और दुःख की प्राप्ति के अनेक उपाय कर लेते हैं । हे मुमुक्षु पुरु-षो ! जिस प्रकार जलमें आकाश और चन्द्रमा आदि पदार्थ वास्तव में नहीं होते हैं परन्तु प्रतीत होते हैं इसी प्रकार इसअसार संसार के पदार्थ वास्तव अनित्य और असत् हैं परन्तु प्राणि-यों को अज्ञानवश नित्य से प्रतीत होते हैं । इसकारण इस भ्रमकल्पित अज्ञान की हानि और ज्ञान की प्राप्ति का उ-पाय करना परमावश्यक है । यदि पुरुष के यहां अनेक गौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी हों परन्तु पान करने मात्र दुग्धही अपना होता है स-हस्त्रों मन अन्न हो, परन्तु अपना निर्वाह केवल पावभर अन्न से ही हो जाता है और अनेक महल हो परन्तु अपना नि-र्वाह केवल आधी खट्वामात्र भूमि सेही होता है क्योंकि जब पुरुष शयन करै है या बैठै है तौ आधी खट्वामात्र भूमिही कार्य्य में आवै है शेष सम्पत्तियों को अन्य पुरुषही भो-गते हैं। खेद है जो उदर वन के शाक पात से सन्तुष्ट हो सकै है उसके कारण भी मनुष्य अनेक आपत्तियों को भोगै है और संसारवन्धन से छूटने का एक भी उपाय नहीं करै है अव यह भी विचारना आवश्यक है कि संसारवन्धन से छू-टने का उपाय कौन है। केवल गृह को त्याग कर वन को चला जाना ही संसारवन्धन से छूटने का उपाय नहीं है, केवल लोकप्रतिष्ठा आदि के निमित्त विरक्तों का सा वेषवना लेना ही संसारवन्धन से छूटने का उपाय नहीं है, विना अ-धिकारी हुए 'सोऽहम् तत्वमसि, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादि वाक्यों का उच्चारण करना मात्रही संसारवन्धन से छूटनेका उपाय नहीं है, किन्तु भक्तहितकारी परमदयालु भगवान्की अनन्यभाव करकै उपासना कर भक्ति करनाही संसारवन्धन से छूटने का उपाय है। वह अनन्यभाव भी यह नहीं है कि केवल विष्णु में ही ईश्वरदृष्टि करना अन्यत्र शिव आदि में ईश्वर दृष्टि न करना या शिवही में ईश्वरदृष्टि करना विष्णु में नहीं करना किन्तु सर्वत्र ईश्वरदृष्टि करकै ईश्वर की उपा-सना करनाही अनन्यभाव है क्योंकि अपरिच्छिन्न ईश्वर को परिच्छिन्न मानना वड़ा अज्ञान है इस प्रकार यह सिद्ध हो-ता है कि भगवद्भक्ति करनाही संसारवन्धन से छूटने का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुख्य उपाय है सो श्रीकृष्णभगवान् ने गीता में अर्जुन के प्रति कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

हे अर्जुन! त्रिगुणमयी मेरी माया को तरना अत्यन्तही कठिन है परन्तु जो पुरुष मेरे शरणागत होते हैं वह पुरुष इस माया को अनायासही में तर जाते हैं। यद्यपि "ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः" ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है। इत्यादि वेदवाक्यों के अनुसार ज्ञान भी संसार बन्धन से छूटने का उपाय हैही परन्तु जब अनेक जन्मों में ज्ञानकी प्राप्ति होती है तब संसार के बंधन से छूटकर अति कठिनतासे भगवत्प्राप्ति होती है सोई श्रीकृष्णभगवान् ने स्वयं गीता में कहा है।

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते"
"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्"

'हे अर्जुन! जो पुरुष ज्ञानमार्ग से मुझे जानने की इच्छा करै है वह पुरुष अनेक जन्मों मे साधनचतुष्टय की प्राप्ति पूर्वक ज्ञानकी प्राप्ति कर संसारबंधन से छूटते हैं इसकारण ज्ञानी पुरुष अनेक जन्मों के अनन्तर मुझको प्राप्त होते हैं' और—

"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः"।

'जो पुरुष अनन्यभाव से मेरी भक्ति करते हैं उन पुरुषों को अल्पकाल मेही अनायास मेरी प्राप्ति हो जाती' है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १ ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ २ ॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि
न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष सदा इन्द्रियों को बश में कर दृढ़ निश्चय करके मेरेही विषें मन बुद्धि की वृत्ति लगाकर भक्ति करते हैं वह पुरुष मुझको अत्यन्त प्रिय होते हैं और हे अर्जुन ! जो पुरुष सम्पूर्ण कर्म्मों को मेरे विषैंही अर्पण कर मेरी भक्ति करते हैं और अनन्यभाव से मेराही ध्यान करते हैं उन भक्त पुरुषों को शीघ्रही संसार समुद्र से तार देता हूं इस प्रकार यह निश्चय हो गया कि संसार समुद्र के पार होने का परम उपाय भगवद्भक्ति ही है । उस भगवद्भक्ति के प्रतिपादन करने वाले यद्यपि शाण्डिल्यसूत्र—नारदसूत्र और विष्णुपुराण आदि अनेक ग्रन्थ हैं परन्तु 'श्रीमद्भागवत' भक्ति के प्रतिपादन करनेवाले वेद पुराण और शास्त्रों का सारभूत प्रसिद्धहि है । परोपकारपरायण परमदयालु श्रीवेदव्यास जी महाराज ने यद्यपि महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों की रचना करी परन्तु तृप्ति न होने के कारण विमन हो गये तब नारद जी के उपदेश से श्रीमद्भागवत की रचना कर भगवद्भक्ति करने का परिश्रम सफल समझा और परमानन्द को प्राप्त हुए इसकारण भगवत् के चरणारविन्दों में प्रीति करनेवाले सत्पुरुषों को योग्य है कि भक्ति के परमस्थान श्रीमद्भाग-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वत् रूपी रस को पानकर परमानन्द की प्राप्ति करें क्योंकि भगवद्भक्तिरूपी रस का पान किये विना परमानन्द की प्राप्ति कदापि नहीं होती है सोई श्रुति मे भी कहा है "रस ँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति—भगवद्भक्ति रूप रस को प्राप्त होकरही परमानन्द की प्राप्ति होती है" इसकारण भक्ति के प्रतिपादन करनेवाले वेद के फल रूप श्रीमद्भागवत् का पान करना परमावश्यक है। यह फल साधारण फलों के समान नहीं है किन्तु अद्वितीय है सोइ व्यास जी महाराज ने श्रीमद्भागवत् के प्रथमस्कन्ध में ही कहा है—

"निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्। पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥"

यह वेदरूपी कल्पवृक्ष का फलस्वरूप श्रीमद्भागवत् प्रथमही प्रथम वैकुण्ठ में था परन्तु परोपकारी लोकहितकारी श्रीनारदजी महाराज ने लाकर व्यासजी को दिया व्यासजी महाराज ने परम अधिकारी शुकदेवजी को दिया तदनन्तर क्रम से शुकदेवजी के मुख से यह श्रीमद्भागवतरूपी फल पृथ्वीतल में प्राप्त हुआ जिसी प्रकार शुक पक्षीके मुखका फल अत्यंत मधुर होय है तिसी प्रकार यह भागवतरूपी फल शुकदेवजी के मुख से पृथ्वीतल में आया है इस कारण अमृतसदृश भक्तिरसस्वरूपही है सो हे भगवद्भक्तों इस अलभ्य फल को सेवन करो। इस श्रीमद्भागवत् के सम्पूर्णही स्थल ईश्वर के गुणों से परिपूर्ण हैं परन्तु दशमस्कन्ध में विशेषतः श्रीकृष्णभगवान् की लीलाओं काही वर्णन है, तत्रापि ८७ वें अध्याय अ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र्थात् वेदस्तुति में तो ज्ञानभक्ति, वैराग्य, गुरुसेवा, भगवद्
भक्ति का उपाय, भगवद्भक्तिफल, सर्वत्र समदर्शिता, औ
सांख्य—योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, तथा वेदान्त
सार का निरूपण इत्यादि अनेक विषय हैं। यद्यपि गुरुकु
में वास कर विद्या के विचार में समय को सफल करनेवा
सत्पुरुष भगवद्भक्त इस वेदस्तुति के स्वाद को भली प्रका
जानते हैं परन्तु अनेक सांसारिक विघ्नों के कारण चिरका
विद्या का अभ्यास न करके भी संसार के बन्धनों से छूट
की इच्छा करनेवाले भगवद्भक्त अति काठिन्य और ग
म्भीर्य्य होने के कारण इस वेदस्तुति के सारभूत तात्पर्
को नहीं जान सके हैं इस कारण उन्हीं साधारण पुरु
के उपकारार्थ और आबाल वृद्ध भगवद्भक्तों के आनन्दा
इस वेदस्तुति की भाषा व्याख्या करना अत्यावश्यक है
यद्यपि इस्की और भी भाषा में व्याख्या हुई है परन्तु कि
में तो आग्रह से श्रुतियों के अर्थ लौट कर कुछ का कु
कर दिया है और किसी में इस प्रकार भाषार्थ किया
कि भाषार्थ संस्कृत टीका से भी कठिन हो गया है इस का
रण हमने शैव वैष्णवादि सम्प्रदाय और द्वैत अद्वैतादि म
का आग्रह छोड़ परम भगवद्भक्त श्रीधरस्वामी औ
उपाध्यायकृत व्याख्या के अवलम्बन कर भ्रम के निवा
रणार्थ श्रुतियों के प्रतिपद का पृथक् २ अर्थ जानने
के निमित्त स्पष्ट रीति से अन्वय तथा वास्तविक तात्प
र्य जानने के निमित्त पदार्थ और भावार्थ यथाशक्ति
परिश्रम कर भगवद्भक्तोंके आनन्दार्थ वेद की श्रुतियों के
अनुकूल लिखा है आशा है कि भगवद्भक्त पुरुष इस वेद-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

े का अवलोकन कर फल प्राप्त करैंगे और मेरे परिश्रम सफल करैंगे तथा मनुष्य धर्म्मानुसार जो भूल होगी उ-ो क्षमा करैंगे तथा मेरा हित जान मुझ को सूचना भी जिस्मे तृतीयावृत्ति में उस भूल को निकाल दिया जायगा।

सतां दर्शनाभिलाषी
सर्व हितैषीकार्यालयसम्पादकः
पण्डित रामस्वरूपशर्म्मा
मुरादावादवास्तव्यः।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः॥"

पुस्तकमिलनेका पत्ता.

हरिप्रसादभगीरथजी कालकादेवीरोड, मुंबई.	सर्वहितैषीकार्यालय. पं०रामस्वरूपशर्म्मा मुरादाबाद. N.W.P.

विज्ञापन.

शि[illegible]ताण्डवस्तोत्र—अन्वय, समास, पदार्थ, तथा भा[illegible]र्थ सहित। आत्मबोध—अन्वय और विस्तृत टीकासहित। तत्ववोध—अन्वय और भावार्थ। जा-[illegible]लङ्कार—अन्वय और भाषासह। चमत्कारचिन्ता-मणि—अन्वय और भाषासह। अध्यात्मरामायण—अ-न्वय और भाषार्थ सहित यह सब पुस्तकें ऊपर लिखे दोनों पतेपर मिलैंगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
श्री... भवन, ... काशी।

श्रीयुतपूज्यपादेभ्यः पण्डितस्वामि
राममिश्रशास्त्रिभ्यो गुरुभ्यो नमः

नमो भगवते गणेशाय
यज्ञात्मने नमः ॥

...कृपापूरपूतात्मा पङ्गुरेति नगोपरि ।
...को वाचालङ्कृतः स्यात्सुराचार्य्यो यथा दिवि ॥ १ ॥
...रावारपरम्पारं निष्पोतोऽपि प्रयाति वै ।
...मामि गणाधीशं निर्विघ्नं कार्य्यसिद्धये ॥ २ ॥

किमेष गीर्वाणगुरुः किमथ ... लंकर ... रतं
पुम्भाववाग्दैवतमित्यजस्रम् ।
दोलायितः सम्प्रति सम्प्रतिष्ठो
हृद्यस्तु मे श्रीगुरुराममिश्रः ॥ ३ ॥

...सृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ।
...शान्ते बोधयाञ्चक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥ १ ॥
... शयानं सम्राजं बन्दिनस्तत्पराक्रमैः ।
...यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥ २ ॥

जय जय जह्यजामजित ! दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—हे अजित ! जय जय दोषगृभीतगुणाम् अगजगदोकसाम् अजाम् जहि यत् त्वम् आत्मना (एव) समवरुद्धसमस्तभगः असि हे अखिलशक्त्यवबोधक ! क्वचित् अजया (क्रीडतः) आत्मना च चरतः ते निगमः अनुचरेत् ॥ १ ॥

भाषा—हे किसी से न जीतिवे योग्य ईश्वर ! अपने ऐश्वर्य को प्रकट करो २ (अर्थात् निद्रा को त्याग हमारी रक्षा करो । यहां आदर अर्थ में पुनरुक्ति है अर्थात् जय पद को दो वार उच्चारण करा है) आत्मानन्द के आच्छादन करने के निमित्त व्यभिचारिणी स्त्री की समान गुणों को ग्रहण करनेवाली स्थावर और जंगम हैं स्थान जिनके ऐसे जीवों की अविद्या को नष्ट करो, क्योंकि तुम अपने आपही संपूर्ण ऐश्वर्यों करके युक्त हो हे संपूर्ण जीवों के बोधक ईश्वर ! कदाचित् सृष्टि के आदि समय में माया करकै क्रीड़ा करते हुए और अपने स्वरूप करकै भी विचरते हुए जो तुम तिन तुम्हारा वेद प्रतिपादन करैं हैं। अर्थात् हे भगवन् ! जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री से मोहित पुरुष नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त होते हैं तिसी प्रकार अनादिकाल से अविद्या करकै मोहित जीव संसार के विषैं नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर अनेक प्रकार के दुःखों को भोगते हैं और देवताओं को भी मोहनेवाली इस अविद्या को दूर करने को समर्थ नहीं होते हैं और आप माया से पर हो संपूर्ण जीवों के अन्तर्यामी हो तथा जीवों को संसाररूपी बंधन से छुटाकर ज्ञान के देनेवाले आपही हो इस कारण आप से प्रार्थना है कि अपनी दयालुता को प्रकट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर जीवों की अविद्या को दूर करो क्योंकि आप धर्म और भक्तों की रक्षा के निमित्त राम—कृष्णादिरूप अवतारों को धारण करते हो और आप सत्य ज्ञान तथा आनन्दस्वरूप होकर विचरो हो इस प्रकार आप के गुणों को वेद वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

अवतरणिका ॥ वेदमन्त्रों में तौ ब्रह्मा शिव इन्द्र अग्नि आदि देवताओं का भी वर्णन है क्योंकि "ब्रह्मादेवानां प्रथमः सं बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" संसार के उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले ब्रह्माजी देवताओं में प्रथम हुए" इत्यादि श्रुतियों करकै ब्रह्माजी जगत् के कर्त्ता सुनने में आवें हैं सो ब्रह्माजी के गुणों को वेद क्यों नहीं वर्णन करैं हैं, इस शंका के निवारण करने को "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन—निश्चय करकै दृश्यमान यह संपूर्ण संसार ब्रह्मही है यहां ब्रह्मातिरिक्त द्वितीय वस्तु कुछ नहीं है" इस श्रुति के अभिप्राय को लेकर समाधान करते हुए वेद स्तुति करै हैं——

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वा विकृतात् ॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥ २ ॥

अन्वयः——(श्रुतयः) अवशेषतया एतत् उपलब्धम् बृहत् (इति) अवयन्ति यतः अविकृतात् मृदि (घटादीनाम्) विकृतेः उदयास्तमयौ (भवतः) नृणाम् भुवि दत्तपदानि कथम् अयथा भवन्ति अतः ऋषयः त्वयि (एव) मनोवचनाचरितम् दधुः ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—हे भगवन् ! आप के सकाश से उत्पन्न होनेवाल यह स्थावरजंगमरूप संसार प्रलयकाल में आप के विषैंही लीन हो जाय है तब आपही शेष रहो हो इसकारण वेद जे हैं इस ब्रह्मादि स्थावर जंगमरूप संसार को आपकाही स्वरूप है ऐसा जानै हैं जिस प्रकार मृत्तिका के विषैं घटादि के उत्पत्ति और प्रलय होयँ हैं तिसी प्रकार अविकारी ईश्वर के विषैं स्थावर जंगम रूप संसार के उत्पति प्रलय होते हैं। अर्थात् यह संसार तुमसे उत्पन्न होय है और तुमारेही विषै लीन होय है इसकारण सब ब्रह्मही है सो श्रुति में भी कहा है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन" मनुष्यों के पृथ्वी के विषैं स्थापन करे हुये चर किस प्रकार अन्यथा हो सकैं हैं। अर्थात् जिस प्रकार स्थान पर्वत और वृक्षादिकों के विषै रक्खे हुये चरण पृथ्वी में ही होय हैं पृथ्वी से भिन्न नहीं होय हैं इसी प्रकार जिस किसी देवता के अर्थ समर्पण किया हुआ पूजनादि तुह्मा विषैंही समर्पित होये हैं क्योंकि सब आपकाही स्वरूप है इस कारण ऋषि जे हैं तुह्मारे विषैंही मन और वचन के आचरणों को सर्वदा समर्पण करते हैं ॥ २ ॥

अवतरणिका—भगवद्भक्ति करने से जो फल हो उसका "भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे" भगवद्भक्ति करने से आत्मतत्व का साक्षात्कार होने से जीव की हृदय की वासनारूप ग्रन्थि दूर हो जाय है। संपूर्ण संशय नष्ट हो जायँ हैं प्रारब्ध और सञ्चित कर्म्म क्षीण हो जायँ हैं इत्यादि श्रुतियों के अनुसार वर्णन करते हुए वेद स्तुति करैं हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति तव सूरयस्त्र्यधिपते ! ऽखिललोकमलक्ष-
पणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥ किमु-
त पुनः स्व धाम विधुताशयकालगुणाः परम !
भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अधिपते ! सूरयः तव अखिललोकमलक्षपणकथामृताब्धिम् अवगाह्य तपांसि जहुः हे परम ! ये स्वधामविधुताशयकालगुणाः (सन्ति ते यदि तव) अजस्रसुखानुभवम् पदम् भजन्ति इति किमुत ॥ ३ ॥

अर्थः—हे त्रिगुणरूप माया के नृत्यकारक परमेश्वर ज्ञानी पुरुष जो हैं वह सम्पूर्ण देहधारियोंके पापों को नाश करनेवाली तुह्मारी कथारूप अमृत के समुद्र को अवगाहन करके पाप और दुःखों को त्यागते हैं (अर्थात् ज्ञानी पुरुष तुह्मारे गुणों को श्रवण करके तथा कीर्तन करके जन्म मरण रूप क्लेशों से छूट जाते हैं) हे परमेश्वर ! फिर जो पुरुष स्वरूप के ज्ञान होने से अन्तःकरण और काल के गुणों का नाश करनेवाले हैं) वह पुरुष (यदि) निरंतर सुख की प्राप्ती करानेवाले तुह्मारे स्वरूप को सेवन करते हैं इसमें क्या कहना है (अर्थात् स्वरूपज्ञान होने से जिनके अन्तःकरण के रागादि धर्म काल के जरा (वृद्धावस्था) आदि धर्म छूट गये हैं वह तुह्मारे भक्त यदि आनन्दस्वरूप आप के पद को प्राप्त होकर पाप और दुःख छूट जाते हैं इस में क्या आश्चर्य है) ॥ ३ ॥

अवतरणिका—अनेक जन्म के पुण्यों से मिलनेवाले देह को प्राप्त होकर यदि संसाररूप बन्धन से छुटाने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले भगवान् की भक्ति न करी तौ हाथ में आई हुई पारस मणि का त्याग कर विषयरूप गुञ्जा के ग्रहण करने के समान निरर्थक है इस प्रकार "न चेदवेदीन्महती विनष्टिः" जिसने भक्तहितकारी परमेश्वर के स्वरूप को न जाना उसकी बड़ी हानि हुई इत्यादि श्रुतियों के अनुसार वर्णन करते हुए वेद स्तुति करै हैं—

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽण्डमसृजन्यदनुग्रहतः॥ पुरुषविधोऽन्वयो ऽत्र चरमो ऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम्॥ ४॥

अन्वयः—असुभृतः यदि ते अनुविधाः (तर्हि) श्वसन्ति (अन्यथा) दृतयः इव (सन्ति) यदनुग्रहतः महदहमादयः अण्डम् असृजन् अत्र पुरुषविधः अन्वयः यः अन्नमयादिषु चरमः अथ यत् सदसतः परम् एषु अवशेषम् ऋतम् (तत्) त्वम् (एव)॥ ४॥

अर्थः—हे भगवन् प्राणी यदि तुह्मारे भक्त हैं तौ सफल श्वास ले हैं (नहीं तौ) चर्म की धौंकनियों की समान हैं (अर्थात्) हे भगवन् जो प्राणी मनुष्यदेह को प्राप्त होकर भक्तिपूर्वक आपके नाम गुणों का निरन्तर कीर्त्तन करते हैं उनका जीवन सफल है और जो पुरुष सर्वत्र परमात्म दृष्टि करकै आपसे प्रेम नहीं करते हैं वह पुरुष अविचाररूप वाक्याग्नि और श्वासरूप वायु करकै मनुष्यों को तपाते हुए चर्म की धौंकनी की समान वृथा श्वास लेते हुए अपनी आयु को नष्ट करते हैं। जिस ईश्वर की कृपा से महत्तत्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अहंकार आदि सब मिलकर ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं (अर्थात् जगत् के कारण भी महत्तत्वादि आप की शक्ति के विना समष्टि व्यष्टिरूप संसार की रचना करनेमें समर्थ नहीं होते हैं) जो ईश्वर इन अन्नमयादि पांच कोशों में जीवरूप होकर प्रवेश करता है (अर्थात् समष्टि व्यष्टि-रूप संसार के विषैं अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय इन पांच कोशों करकै रचित देहादिकों के विषैं प्रवेश कर तदाकार हुए से प्रतीत होते हैं। जो ईश्वर अन्न-मयादि पांच कोशों में अन्त का आनन्दमय कोश है (अर्थात् जिस प्रकार साधारण पुरुषों के बोध कराने के निमित्त 'वह वृक्ष की शाखा के ऊपर चन्द्रमा है' इस प्र-कार कहा जाता है वस्तुतः शाखा पर चन्द्रमा नहीं होता है इसी प्रकार यद्यपि ईश्वर पञ्चकोशों से पर है तथापि प्रा-णियों के बोध के निमित्त वेदमें आनन्दमय कोशरूप करकै व-र्णन किया है वस्तुतः तौ आनन्दमय कोश से भी परही है)। जो ईश्वर सत् असत् से पर है अन्नमयादि पञ्चकोशों के विषैं शेषभूत है सत्य है सो तुम (ही हो) ॥ ४ ॥

अवतरणिका—इस प्रकार भगवद्भजन के माहात्म्य को वर्णन कर तथा तत्व—निरूपण करकै "उदरं ब्रह्मेति शा-र्कराक्षा उपासते" इत्यादि श्रुतियों के अनुसार निरुपाधिक रूप की प्राप्ति के अर्थ सोपाधिक रूप की उपासना करनेवाले भगवद्भक्तों के भेदों को निरूपण करते हुए वेद स्तुति करै हैं—

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरप-
द्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥ तत उदगादनन्त !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पत-
न्ति कृतान्तमुखे ॥ ५ ॥

अन्वय—ऋषिवर्त्मसु ये कूर्पदृशः (सन्ति ते) उदरम् उपासते (ये) आरुणयः (ते) परिसरपद्धतिम् हृदयम् दहरम् (उपासते) ततः तव परमम् धाम शिरः उद्गात् हे अनन्त! (पुरुषाः) यत्समेत्य पुनः इह कृतान्तमुखे न पतन्ति ॥ ५ ॥

अर्थ—ऋषियों के सम्प्रदायों के विषैं जो पुरुष स्थूल दृष्टिवाले (हैं) (वे पुरुष) वेद के उदररूप कर्म की उपासना करते हैं । (जो) आरुणि आदि योगी पुरुष हैं (वे) नाड़ियों का मार्ग जो हृदय तिसके विषैं स्थित दहर ब्रह्मको (उपासना करते हैं) हे अनन्त ! तिस हृदय से उठकर तुम्हारा श्रेष्ठ तेज ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त ऊपर को प्राप्त होता हैं, (ज्ञानी पुरुष) जिस तेज को प्राप्त होकर फिर इस संसाररूप काल के मुख में नहीं गिरते हैं (अर्थात् भगवत् की उपासना करनेवाले तीन प्रकार के होते हैं कर्म्मोपासक, योगोपासक और ज्ञानोपासक इनमें कर्म्मोपासक वेद के उदररूप कर्म को ही ब्रह्म मानकर उपासना करते हैं । तथा योगद्वारा हृदय के विषैं भगवत् का चिन्तन करनेवाले योगीजन हृदय के विषैं स्थित दहर ब्रह्म की उपासना करते हैं- और जिस तेज को प्राप्त होकर पुरुष फिर जन्ममरणरूप क्लेशों को नहीं प्राप्त होते हैं ऐसे तुम्हारे तेज को ज्ञानी पुरुष उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

अवतरणिका—इस ऊपर की श्रुति में ईश्वर का कर्म और हृदय से सम्बन्ध वर्णन किया है सो इस प्रकार तो क-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मांदिकों के विषैं जीव का भी सम्बन्ध है फिर ईश्वर में जीव की अपेक्षा क्या विशेषता है जिससे प्राणी ईश्वर की ही उपासना करैं ? इस शंका को निवारण करने के निमित्त "एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा, कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च"। सर्वान्तर्य्यामी कर्म्मफल के देनेवाले सब प्राणियों के अधिष्ठान सबके साक्षी चैतन्यस्वरूप निर्गुण अद्वितीय ईश्वर सर्वत्र स्थित हैं परन्तु मायामोहित जीव को प्रतीत नहीं होते हैं इस कारण जीव परतन्त्र है और ईश्वर सर्वथा स्वतन्त्र है। इत्यादि श्रुतियों के अभिप्राय के अनुकूल समाधान करते हुय वेद स्तुति करते हैं—

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियो ऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—अनलवत्स्वकृतानुकृतिः (त्वम्) हेतुतया स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन् इव (वर्त्तमानःसन्) तरतमतः चकास्सि अथ अभिविपण्यवः विरजधियः वितथासु अमूषु (वर्त्तमानम्) तव धाम समम् अवितथम् एकरसम् अन्वयन्ति ॥ ६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! अग्नि की समान अपने करके रचना करी हुई योनियों का अनुकरण करनेवाले तुम उपादानकारणरूप होकर अपने द्वारा रचना करी हुई नाना प्रकार की योनियों के विषैं प्रवेश करते हुए से (वर्त्तमान होकर) ऊँच नीच भाव करके प्रकाशित होते हो (अर्थात् जिसप्रकार अग्नि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वभाव से न्यूनाधिक भावरहित होता है तथापि काष्ठरूप उपाधि के वश अग्नि के विषैं न्यूनाधिक भाव प्रतीत होता है तिसी प्रकार हे ईश्वर ! आप भी न्यूनाधिकभाव शून्य हो तथापि स्वयं रचना करीहुई योनियों के विषैं प्रविष्ट हुए से न्यूनाधिकभाव को प्राप्त होते हो) इसी प्रकार व्यवहारशून्य (अर्थात् इस लोक और परलोक के सकामकर्म्मों का परित्याग कर ईश्वर के विषैं निष्काम भक्ति करनेवाले) निर्मल है बुद्धि जिनकी ऐसे पुरुष असत्स्वरूप इन योनियों के विषैं (वर्त्तमान जो तुम) तिन तुम्हारे स्वरूप को सब है सत्स्वरूप है एक रस है ऐसाही जानते हैं ॥ ६ ॥

अवतरणिका—पहिली श्रुति की अवतरणिका में जो शङ्का कर आये हैं उसका और भी समाधान करै हैं कि ईश्वर के विषैं उपाधिकृत दोष प्राप्तही नहीं हो सकै हैं क्यौं कि अविद्या और कर्मों करके जन्ममरणरूप क्लेशों को प्राप्त होनेवाला जीव भी भक्ति और ज्ञान की प्राप्ति होने से अविद्या तथा कर्म्मों के वन्धन से निर्मुक्त होकर ब्रह्मभाव कोही प्राप्त हो जाता है, इस प्रकार "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा ह्यस्य हृदिश्रिताः । अथमर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" —जिस समय इस प्राणी के हृदय की कामना (वासना) दूर हो जाती हैं तव मर्त्यभाव को त्यागकर ब्रह्म को प्राप्त हो जाय है। इत्यादि श्रुतियों के अभिप्राय को वर्णन करते हुए वेद स्तुति करै हैं—

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ॥ इति नृगतिं वि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिम-भवं भुवि विश्वसिताः ॥ ७ ॥

अन्वयः—(वेदाः) अमीषु स्वकृतपुरेषु (वर्तमानम्) पुरुषम् अवहिरन्तरसम्वरणम् अखिलशक्तिधृतः तव अंशकृतम् वदन्ति कवयः इति नृगतिम् विविच्य भुवि विश्वसिताः (सन्तः) निगमावपनम् अभवम् भवतः अङ्घ्रिम् उपासते॥७॥

अर्थः—वेद जे हैं अपने कर्मों करके रचना किये हुये इन देहों के विषे (वर्तमान) जीव को कार्य कारणरूप आवरण शक्तिरहित सम्पूर्ण शक्तियों के धारण करनेवालि जो तुम तिन तुह्मारा अंश वर्णन करते हैं। (अर्थात्) हे परिपूर्ण ईश्वर ! तुम बाहर भीतर आवरणशक्तिरहित हो और अपने कर्मों के अनुसार नाना प्रकार की योनियों के विषैं भ्रमण करनेवाले जीव को तुह्माराही अंश वर्णन करते हैं। ज्ञानी पुरुष इस प्रकार जीव की गति को विचार कर पृथ्वी के विषै विश्वासयुक्त होकर वेदमें कहे हुये कर्मों के क्षेत्ररूप संसार के दूर करनेवाले तुह्मारे चरणकमल को उपासना करै हैं। (अर्थात्) हे भगवन् ! ज्ञानी पुरुष इस जन्ममरणरूप संसार को असार जान भयभीत हो कर मुक्त होने की इच्छा से विश्वासयुक्त होकर आपकेही चरणकमलों के विषैं भक्ति करै हैं ॥ ७ ॥

अवतरणिका—कोई सम्प्रदायवाले भक्ति को तत्वज्ञान मात्र का साधन कहै हैं मोक्ष का नहीं, इस भ्रम को दूर "नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च" देवता और मोक्ष की इच्छा कर- दे जीवन्मुक्त पुरुष भी भक्तिपूर्वक

यौन्मुख त्वयि हित ।

न्त्यहो असदुपासनय

रुभये कुशरीरभृतः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रणाम करते हैं इत्यादि श्रुतियों के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का साधन और पञ्चम पुरुषार्थरूप भक्ति है। (अर्थात्) चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त होकर जीवन्मुक्त पुरुष भी भक्ति को पञ्चम पुरुषार्थ जानकर भक्ति की इच्छा करते हैं इस प्रकार भक्ति का प्रतिपादन करते हुये वेद स्तुति करैं हैं—

दुरवगमात्मतत्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः ॥ न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ! ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे ईश्वर! दुरवगमात्मतत्वनिगमाय आत्ततनोः तव चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः केचित् अपवर्गम् अपि न परिलषन्ति ॥ ८ ॥

अर्थः—हे भगवन्! कठिन से जानने योग्य आत्मतत्व के दर्शाने के अर्थ अवतार धारण करनेवाले जो तुम, तिन तुम्हारे चरणकमलों को हंसों की समान सेवन करनेवाले जो भक्तों के समूह तिनके सत्सङ्ग से गृह आदिक का भी त्याग करनेवाले कोई सत्पुरुष मोक्ष की भी नही इच्छा करते हैं (अर्थात्) हे भगवन्! आत्मतत्व का ज्ञान अनेक जन्मों के पुण्य से होय है परन्तु आप भक्तों के ऊपर अनुग्रह कर रामकृष्णादि सगुणरूपों को धारण करके भक्तों को अनायासही में आत्मतत्व को करामलक वं
कारण आपके विषैं भक्ति करनेवा[illegible] पुरुष वद-
नहीं करैं हैं ॥ ८ ॥

[illegible] नृगतिं वि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवतरणिका—ईश्वर की कृपा से अपने अनुकूल और ईश्वर की भक्ति करने के योग्य मनुष्यदेह की प्राप्ति होकर भी यह हतभाग्य जीव देह गेह स्त्री पुत्रादिकौं के विषैं आसक्त होरहे हैं और अज्ञानवश अपने आत्मा ईश्वर के विषैं प्रेम नहीं करै हैं इसकारण "आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन, न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं वभूव, नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति"। इस ईश्वर के जीवरूप से क्रीड़ा करने की वाटिकारूप ग्राम नगरादि असार संसार को सब पुरुष अज्ञानवश सत्य सा देखैं हैं और वाटिका के वनानेवाले ईश्वर को कोई हतभाग्य प्राणी स्मरण नहीं करै है, जिस ईश्वर ने प्रजाओं को उत्पन्न किया है उस ईश्वर को प्राणी नहीं जानते हैं इस कारण जीव ईश्वर का वडा अन्तर हो गया है। क्यौंकि अविद्या से मोहित जीव नाना प्रकार मिथ्या तर्क कुतर्क करैं हैं अपने प्राणों को तृप्ति करनेही में तत्पर रहैं हैं, कर्मफल की इच्छा से वारम्बार यज्ञ करकै संसार में जन्ममरण को प्राप्त होते हैं इत्यादि श्रुतियों के अनुसार भगवद्भक्ति के विना संसार में नाना प्रकार के क्लेशों को भोगनेवाले जो जीव हैं तिनकी दुःखनिवृत्ति के अर्थ भगवद्भक्ति का उपदेश करते हुए वेद स्तुति करैं हैं—

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रियआत्मनि च न वत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—(हे परमेश्वर !) त्वदनुपथम् इदम् कुलायम् आत्मसुहृत्प्रियवत् चरति वत तथापि आत्महनः उन्मुखे हिते प्रिये आत्मनि च त्वयि न रमन्ति अहो यदनुशयाः असदुपासनया कुशरीरभृतः (सन्तः) उरुभये भ्रमन्ति ॥ ९ ॥

अर्थः—हे परमेश्वर ! आपकी सेवा करने के योग्य यह शरीर अपने प्रिय मित्र की समान वर्ताव करै है तौ भी आत्मघाती पुरुष संसार के उद्धार करने में सन्मुख, हित के करनेवाले प्रिय आत्मा जो तुम, तिन तुह्मारे विषैं भक्ति नहीं करैं हैं। वडे आश्चर्य की वार्ता है ! असत् जो देहादिक तिसकी सेवा में है वासना जिनकी, ऐसे पुरुष ! भगवद्भक्ति को छोड़ असत् संसार के पदार्थों में आसक्ति करकै (श्वानशूकरादिकों के) निन्दित शरीर को धारण करते हुए अति भयङ्कर संसार के विषैं वारम्वार जन्ममरणरूप क्लेश को प्राप्त होते हैं। (अर्थात्) हे भगवन् आपकी भक्ति करने के योग्य यह मनुष्यशरीर अपने प्यारे मित्र की समान प्राणियों के आधीन है वडे कष्ट की वार्त्ता है तौ भी यह मन्दमति पुरुष परमदयालु सवको समान देखनेवाले जो तुम तिनके तुह्मारे विषैं भक्ति नहीं करैं हैं और अज्ञानरूपी निद्रा में शयन कर असत् जो देह इन्द्रियादि तिनही के लालन पालन में प्रीति करकै संसार में नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर अनेक क्लेशों को भोगते हैं सोई यमराज ने नचकेता के प्रति कहा है " पुनःपुनर्वशमापद्यते मे" जो भगवद्भक्ति नहीं करते हैं वह पुरुष वारम्वार मेरे वश को प्राप्त होते हैं, यह उपनिषद् का प्रमाण है ॥ ९ ॥

अवतरणिका—भगवन् के विषैं प्रेम या द्वेष आदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसी प्रकार से भी मन लगाने से प्राणियों का कल्याणही होता है इस प्रकार "आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" हे मैत्रेयि ! आत्मा का श्रवण करै, मनन करै, निदिध्यासन करै, दर्शन करै अर्थात् जिस किसी प्रकार हो सकै आत्मतत्व को जानै इत्यादि श्रुतियों के अनुसार भक्ति या और जिस किसी प्रकार से भी आपका ध्यान करने का उपदेश तथा ध्यान करने का फल और आपकी समदर्शिता को वर्णन करते हुए वेद स्तुति करैं हैं—

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् । स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोंऽघ्रिसरोजसुधाः ॥ १० ॥

अन्वयः—(हे भगवन् !) निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजः मुनयः (इह) हृदि यत् उपासते अरयः अपि तत् (एव) ययुः उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियः स्त्रियः (अपि) स्मरणात् (तत्, एव, ययुः) समदृशः ते (सर्वे एव) समाः । (अतः ते) अङ्घ्रिसरोजसुधाः वयम् अपि (स्मरणात् तत् एव पश्यामः) ॥ १० ॥

अर्थः—हे भगवन् ! प्राण मन और इन्द्रियों को वश में करकै वहुत काल पर्यन्त योगाभ्यास करनेवाले मुनिजन इस संसार के विषैं जिस तत्व को ध्यान करैं हैं और आपके विषैं शत्रुभाव से मन लगानेवाले रावण कंसादिक भी उसही तत्व को प्राप्त हुए, और शेष जी के देह की समान जो आपके भुजदण्ड तिनको प्रेमपूर्वक ध्यान करती हुईं गो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्नियें भी उस तत्व को ही प्राप्त हुईं। समदृष्टि जो आप तिन आपको सबही समान है इस कारण आप के चरणकमल के रज को भक्तिपूर्वक धारण करते हुए हम (वेद) भी उस तत्व कोही देखैं हैं (अर्थात्)हे ईश्वर ! आप समदृष्टि हैं इसकारण जिस किसी प्रकार से भी आपका स्मरण करनेवाले पुरुष आपकोही प्राप्त होते हैं सोई श्री व्यासजी महाराज ने कहा है "येन केन प्रकारेण मनः कृष्णे निवेशयेत्" ॥१० ॥

अवतरणिका—भगवत्तत्व का जानना ब्रह्मादि देवगणों को भी दुर्लभ है फिर यह पञ्च कोश से आच्छादित मनुष्यादि किस प्रकार जान सकैंगे सोई कहैं हैं कि "यतो वाचो निवर्त्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह, को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्" जहां से मन और वाणी की वृत्ति प्राप्त न होकर निवृत्त हो जाय है, उस आत्मतत्व को कौन भली प्रकार जान सकै है ? और कौन वर्णन कर सकै है ? इत्यादि श्रुतियों के अनुसार यद्यपि अनेक जन्मों के पुण्यों से भी आत्मतत्व का ज्ञान दुर्लभ होता है तथापि भगवद्भक्ति के द्वरा भगवत्तत्व का साक्षात्कार हो ही जाता है इस प्रकार अंगीकार करते हुए वेद स्तुति करैं हैं—

क इह नु वेद बतावरजन्मलयो ऽग्रसरं यत उद-
गादृषिर्यमनुदेवगणा उभये । तर्हि न सन्न चास-
दुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृ-
ष्य शयीतयदा ॥ ११ ॥

अन्वयः—बत इह अग्रसरम् (त्वाम्) अवरजन्मलयः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कः नु वेद यतः ऋपिः उदगात् यम् अनु उभये देवगणाः (उदयुः यदा भगवान् सर्वम्) अवकृष्य शयीत तर्हि सत् न असत् च न उभयम् न कालजवः च न शास्त्रम् न तत्र किमपि न (भवति) ॥ ११ ॥

अर्थः—बडे कष्ट की वार्ता है कि इस कर्म्मक्षेत्ररूप संसार के विषैं मनुष्यदेह को प्राप्त होकर भी प्राणी अपने उत्पत्ति स्थान परमेश्वर को भक्ति के द्वारा जानने का उपाय नहीं करते हैं। हे भगवन्! (आपकी कृपादृष्टि के विना) इस संसार के विषैं ब्रह्मादिकों के भी आदि कारण जो तुम तिन तुमको आपके अनन्तर उत्पन्न होकर आपके सामने नाश को प्राप्त होने वाला कौन जानसकै है (अर्थात्) कोई नहीं जानै है क्योंकि जिन तुह्मारे सकाश से ब्रह्माजी उत्पन्न हुये तिन ब्रह्माजी के पीछे निवृत्तिनिष्ठ सनकादि और प्रवृत्तिनिष्ठ मरीचि आदि दोनो देवताओं के समूह उत्पन्न हुये। जब भगवान् सब को संहार करकै शयन करै हैं तब सत् कहिये आकाशादिक नहीं होय हैं, असत् कहिये महत्तत्वादि नहीं होय हैं,। उभय कहिये सत् और असत् से रचे हुये शरीर नहीं होय हैं। काल का वेग नहीं होय है। सम्पूर्ण सृष्टि विषय के जननेवाले शास्त्र पुराणादि नहीं होय हैं। उस समय कुछ भी नहीं होय है (अर्थात्) हे भगवन्! अति सूक्ष्म आत्मतत्व के जानने को कोई भी समर्थ नहीं होय है क्योंकि सृष्टि की आदि में आपको जाननेवाला कोई नहीं होय है यदि कहा जाय कि ब्रह्मादिक जानते होंगे तहां कहैं हैं कि ब्रह्मादिक भी आपको नहीं जानै हैं क्योंकि वह भी सृष्टिकर्तृत्व बुद्धि आदि उपाधियुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं और प्रयलकाल में आप सबको अपने विषैं लीन कर लेते हो इस कारण प्रयल के अनन्तर भी आपको जाननेवाला कोई नहीं होय है सोई श्रुति में भी कहा है "को अद्धावेद क इह प्रवोचत्" बुद्धि आदि कौन ईश्वरको जान सकै है ? और कौन वर्णन कर सकै है ? अर्थात् कोई नहीं जानसकै है, वर्णन कर सकै है परन्तु जो आपके विषैं सर्वत्र एकाकाररूप भक्ति करैं हैं उन सत्पुरुषों को आप अनायासही में दर्शन देते हो ॥ ११ ॥

अवतरणिका—ऊपर कही हुई श्रुतियों से यह बात सिद्ध हुई कि ईश्वर के विषैं भक्ति करनाहीं मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है तहां शङ्का होय है कि शास्त्रों में तो ज्ञान के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति वर्णन करी है क्योंकि गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन के प्रति कहा है कि "अपिचेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः । सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥" हे अर्जुन! यद्यपि सब पापियों से भी अधम पापी हो परन्तु सम्पूर्ण पापसमूह को ज्ञानरूपी नौका से तर जायगा । तहां समाधान करते हैं कि यद्यपि शास्त्रों में ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति वर्णन करी है परन्तु ज्ञान का मार्ग बतलानेवाले शास्त्रकार भी जब ज्ञान का निर्णय करने में अति भ्रम को प्राप्त हो जाय हैं फिर ज्ञानप्राप्ति की इच्छा करनेवाले मन्दबुद्धि को किस प्रकार निश्चय होयगा क्योंकि नवीन नैयायिक वैशेषिक ऐसा मानते हैं कि यह संसार उत्पत्ति के पहले असत् है और उत्पन्न होने के अनन्तर सत् हो जाय है परन्तु यह कहना कदापि नहीं बन सकै है क्योंकि गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है कि 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' "असत् सत् नहीं होय है और सत् असत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं होय है" सोई श्रुति में भी कहा है कि "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" "हे सौम्य यह संसार उत्पत्ति से पहले सत् ही था।" इस कारण वैशेषिक जो कहते हैं कि यह संसार उत्पत्ति से पहिले असत् है सो ठीक नहीं है। और योगशास्त्र के आचार्यों का यह मत है कि यह जीव ईश्वर से भिन्न और सत्यस्वरूप है उपाधियुक्त नहीं है परन्तु जिस प्रकार ताम्बा सुवर्ण रूप नहीं होय है सुवर्ण से भिन्नही होय है तथापि गन्धक का तैल आदि औषधियों के प्रभाव से सुवर्णरूप हो जाय है तिसी प्रकार ब्रह्म से भिन्न स्वरूप जीव भी योगवल से ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाय है यह कहना भी नहीं वनै है क्योंकि अद्वैतमतानुयायी वेदान्ती श्रुतियोंके अनुसार ऐसा मानै हैं कि जीव सब काल में ब्रह्मरूपही है परन्तु अज्ञानवश अपने स्वरूप को भूल कर संसार में जन्ममरण को प्राप्त होय है जिस प्रकार कोई राजा का पुत्र होय और उसको राजा वन में छोड़ देय और भील उस्का पालन करैं तौ वह राजपुत्र कालान्तर में अपने को भीलही जानै है राजपुत्र नहीं जानै है परन्तु जब कोई उस्को स्मरण करावै कि तू व्याध नहीं है अमुक राजा का पुत्र है तब वह अपने को व्याध न जान कर राजपुत्र जानने लगे है इसी प्रकार यह जीव भी अपने स्वरूप को अज्ञानवश भूल जाय है और जब ज्ञान होय है तब वास्तविक स्वरूप को जानै है। श्रुति भी जीव और ब्रह्म की सब काल में एकता को प्रतिपादन करै हैं "ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति" यह जीव ब्रह्मही होय है और अज्ञानवश अपने स्वरूप को भूल जाय है और ज्ञान होने पर फिर ब्रह्मभाव को ही प्राप्त हो जाय है इस कारण योगशास्त्र के आचार्य्य जो जीव को ब्रह्म से भिन्न सत्यस्वरूप वर्णन करैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं सो कदापि नहीं हो सकै है । और प्राचीन नैयायिक गोतम ऐसा मानै है [illegible], त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, तथा मन यह छः ज्ञानेन्द्रिय और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, तथा सङ्कल्प विकल्प यह इन्द्रियों के छः विषय और सुनना, स्पर्श करना, देखना, स्वाद लेना, सूंघना तथा सङ्कल्प विकल्प करना यह छः इन्द्रियों के ज्ञान तथा शरीर, सुख और दुःख यह इक्कीस दुःख हैं और सत्य हैं इनका नाश होनाही जीव का मोक्ष कहलावै है । तहां शङ्का होती है कि विषयों का आनन्द और सुख यह तो दुःख नही है इनको दुःखरूप से क्यों वर्णन करा है तहां कहते हैं कि अन्त में विषयों के आनन्द और सुखोंका भी नाशही होय है इस कारण ज्ञानीको प्राकृत सुख भी दुःखही है । (दुःखमेव सर्वं विवेकिनः) गोतममतानुयायी इस इक्कीस दुःखोंके नाशरूप मोक्ष का इस प्रकार क्रम दिखाते हैं कि जब संसार के तत्व का ज्ञान होता है तब संपूर्ण पदार्थों से अतिरिक्त ईश्वर का ज्ञान होने से अज्ञान का नाश होता है तदनन्तर रागद्वेषादि दोनों का नाश होता है । रागादि का नाश होनेसे धर्माधर्मरूप संसार की प्रवृत्ति नहीं होय है जब प्रवृत्ति नहीं होय है तो देहान्तर भी जीव नहीं धारण करै है भोग से प्रारब्ध कर्म्मों का नाश हो जाय है और ज्ञान से सञ्चित कर्म्मों का नाश हो जाय है इस प्रकार आगे को देहधारण न करने से और वर्त्तमान शरीर का पात होने से जीव इक्कीस दुःखोंके नाशरूप मोक्ष को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार प्राचीन नैयायिकों का कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि अद्वैतमतानुयायियोंका वेदानुकूल इस प्रकार दृढ़सिद्धान्त है कि यह ब्रह्मातिरिक्त सम्पूर्ण संसार अंधकारमें पड़ी हुई रज्जु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में सर्प के भ्रम की समान अज्ञानवश सत्य सा प्रतीत होय है जब ज्ञान की प्राप्ति होय है तब सम्पूर्ण संसार मिथ्या-भूत हो जाय है सोई श्रुति में भी कहा है कि "नान्यः पन्था विद्यते यनाय" ज्ञान के सिवाय और कोई मार्ग मुक्त होने का नहीं है। इस कारण इक्कीस दुःखरूप संसार सत्य नहीं है किन्तु सीपी में रजत के भ्रम की समान मिथ्याही है। अविद्या से मोहित पुरुष इक्कीस दुःखरूप संसार को सत्य मानै हैं। सोई श्रुति में भी कहा है "अनीशया शोचति मुह्यमानः।" साङ्ख्यमतानुयायी कपिल आदिकों का ऐसा सिद्धान्त है कि ईश्वर से अलग नित्य सत्यस्वरूप अनेक जीवात्मा हैं इस प्रकार कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ईश्वर और जीव का जो भेद प्रतीत होय है सो सब अविद्या करकै कल्पना मात्रही है वास्तव में सब ब्रह्मात्मकही है सोइ श्रुति में भी कहा है "एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः" एक ही ईश्वर प्रति भूत में स्थित है। "एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्" एक रूप करके या अनेक रूप करके जो देखने में आवै है सो सब ब्रह्मही है जिस प्रकार एक चन्द्रमा से जल में अनेक चन्द्र दीखै हैं वह सब चन्द्रमा के प्रतिबिम्बस्वरूपही होते हैं। इस कारण वास्तव में जीव इश्वरमें भेद मानना शशविषाण की समानही है। मीमांसकों का ऐसा सिद्धान्त है कि नित्य सत्यस्वरूप शुभकर्म फल से दुःखों को उत्पन्न नहीं होने देना यही मोक्ष है। (अर्थात्) यज्ञादि शुभकर्म्मों के न करने से दुःखों की प्राप्ति होनाही संसार है और यज्ञादि कर्म्मों को करके नित्य स्वर्ग की प्राप्ति होने से दुःखों की उत्पत्ति न होना यही मोक्ष है। इस प्रकार मीमांसकों का कहना कदापि सत्य नहीं हो सक्ता। क्योंकि जिस प्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कार स्वर्गादि कर्म्मफल की भी अनित्यता सिद्ध होती है सो तेईसवीं श्रुति मे स्पष्ट रीति से दिखावेंगे। (अर्थात्) ब्रह्मातिरिक्त सब वस्तुओं के असत् होने से स्वर्गफल भी असत्ही हैं। इस प्रकार वैशेषिक, योग, न्याय, सांख्य और मीमांसा आदि शास्त्रों के सिद्धान्त में नाना प्रकार के दोष प्रतीत होते हैं; इस कारण ज्ञानमार्ग के प्रचारक आचार्य्यों को भी जब भ्रम है तब मोक्ष की इच्छा करनेवाला अतिप्राकृत प्राणी किस प्रकार ज्ञान के तत्व को जानकर शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति कर सकेगा सोई श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है— "बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते" इस कारण भगवद्भक्ति का उपदेश करते हुये वेद स्तुति करते हैं। यहां वैशेषिक, योग, न्याय, सांख्य, मीमांसा इन पांचों शास्त्र के मतों का निरूपण कर वेदान्तशास्त्र का सिद्धान्तरूप से निरूपण किया है।

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां
विपणिमृतं स्मरन्त्युपदिशन्तित आरुपितैः ॥
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि
न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ १२ ॥

अन्वयः—(हे भगवन् !) ये असतः जनिम् (वदन्ति) ये सतः मृतिम् (वदन्ति) उत ये आत्मनि भिदाम् (वदन्ति) ये च विपणिम् ऋतम् स्मरन्ति उपदिशन्ति च ते आरुपितैः एव यत् त्रिगुणमयः पुमान् इति भिदा (सा) अवबोधकृता ततः परत्र अवबोधरसे त्वयि सः न भवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जो असत् की उत्पत्ति कहते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा जो सत् का नाश कहते हैं और जो जीवात्मा परत्मा में भेद कहते हैं; और जो कर्म्म को सत्य जानते हैं, तथा उपदेश करते हैं, वह सब भ्रम करकेही वर्णन करै हैं; और त्रिगुणमय पुरुष है ऐसा जो भेद है सो अज्ञान का करा हुआ है। क्योंकि त्रिगुण से पर नित्य ज्ञानस्वरूप जो तुम तिन तुम्हारे विषैं त्रिगुण का सम्बन्ध नहीं हो सकै है। (अर्थात्) हे भगवन् ! सब शास्त्राकार अपनी २ बुद्धि के अनुसार आत्मतत्व का बिचार करैं हैं परन्तु यथावत् स्वरूप का ज्ञान नहीं होय है क्योंकि जबतक आपके विषैं भक्ति नहीं होय है और आपकी कृपादृष्टि नहीं होय है तब तक आपके स्वरूप का यथावत् ज्ञान किसी प्रकार भी नहीं होय है ॥ १२ ॥

अवतरणिका—ऊपर की श्रुति में ऐसा कहा है कि आत्मा के विषैं भेद बुद्धि अज्ञान वश होय है वास्तव में भेद नहीं है तहां शङ्का होय है कि मैं सुखी हूँ मैं दुःखी हूँ मैं ज्ञानी हूँ इत्यादि प्रतीतियों से सर्वत्र भेद देखने में आवै है फिर भेद अज्ञानवश होय है यह वार्त्ता किस प्रकार हो सकै है इस शङ्का का "ब्रह्मैवेदꣳसर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्" जो कुछ वस्तु संसार में दीखै है सब ब्रह्मही है ब्रह्म से अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है इत्यादि श्रुतियों के अनुसार समाधान करते हुये वेद स्तुति करैं हैं—

सदिवमनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः। न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—(हे भगवन् !) आमनुजात् मनः इदम् त्रि-वृत् असत् (तथापि) त्वयि सत् इव विभाति आत्मविदः इदम् अशेषम् आत्मतया सत् अभिमृशन्ति हि (कनकार्थिनः) त-दात्मतया कनकस्य विकृतिम् न परित्यजन्ति (तथा आत्म-विद्भिः) स्वकृतम् अनुप्रविष्टम् (इदम्) अत्मतया अवसितम् १२

अर्थः—हे भगवन् ब्रह्मा जी को आदि ले स्तम्बपर्यंन्त मनःकल्पित यह त्रिगुणमय संसार असत् है तौ भी तुह्मारी सत्ता से सत् सा प्रतीत होय है । आत्मतत्व के जाननेवाले इस संपूर्ण संसार को आत्मभाव करकै सत्य जानै हैं । जिस प्रकार सुवर्ण की इच्छा करनेवाले पुरुष सुवर्ण-रूप होने के कारण सुवर्ण के विकाररूप जो कटक कुण्ड-लादिक भूषण तिनको नहीं त्यागैं हैं । तिसी प्रकार आत्म-तत्व के जाननेवालों करकै ईश्वर का रचा हुवा तदनन्तर ईश्वरनेही जीवरूप करकैं किया है प्रवेश जिसमें ऐसा यह सब प्रपञ्च आत्मभाव करकै निश्चय करा गया है (अर्थात्) हे भगवन् ! ब्रह्मा जी को आदि ले वृक्षयोनि पर्य्यन्त सम्पूर्ण संसार को आप उपादान कारण होकर रचना करो हो और आपही जीवरूप होकर संपूर्ण प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करो हो इसकारण आत्मतत्व को यथावत् जाननेवाले ज्ञानी पुरुष इस संपूर्ण संसार को ब्रह्मही जानै हैं ॥ १२ ॥

अवतरणिका—इस ऊपर की श्रुति मे इस प्रकार वर्णन करा है कि संपूर्ण संसार भगवत्‌रूपही है इसकारण सर्वरूप करकै भगवत् की दृढ़ उपासना किये विना इस संसा-ररूप सर्प के मुख से जीव कदापि मुक्त नहीं होय है तथा जो बुद्धिमान पुरुष वेद शास्त्रादि पढ़कर भी भगवत् से भक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं करते हैं वह पुरुष केवल भ्रम कोही प्राप्त होते हैं मुक्ति को नहीं । इस प्रकार निश्चय करते हुये "य इह स्थातुमपेक्षते तस्मै सर्वैश्वर्य्यं ददाति यत्र कुत्रापि म्रियते देहान्ते देवः परं ब्रह्मतारकं व्याचष्टे येनामृतीभूत्वा सोऽमृतत्वं च गच्छति"। जो इश्वर का भक्त उत्कर्षपूर्वक इस लोक में स्थित होने की इच्छा करै है उसको ईश्वर सर्व प्रकार के ऐश्वर्य्य देते हैं और वह भगवद्भक्त जिस स्थान में भी प्राण त्याग करै तहांही भगवान् ओंकार का उपदेश करते हैं जिस उपदेश से प्राणी देहत्रयरूप उपाधि से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होय है । इत्यादि श्रुतियों के अनुसार भगवद्भक्ति का माहात्म्य वर्णन करते हुए वेद स्तुति करैं हैं—

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्वनिकेततया त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः । परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥ १४ ॥

अन्वयः—(हे भगवन् !) ये अखिल सत्वनिकेततया तव परिचरन्ति (ते) अविगणय्य निर्ऋतेः शिरः पदा आक्रमन्ति उत त्वयि कृतसौहृदाः ते खलु (अन्यान् अपि) पुनन्ति अपि (च) ये विमुखाः (ते) न विबुधान् अपि तान् पशून् इव गिरा परिवयसे ॥ १४ ॥

अर्थः—हे भगवन् ! जो पुरुष सर्वव्यापक भाव करकै तुम्हारी सेवा करै हैं वह पुरुष तिरस्कार करकै मृत्यु के भी शिर को चरण से आक्रमण करै हैं और जो तुम्हारे विषैं अनन्यभक्ति करनेवाले हैं वह पुरुष निश्चय करकै और पु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुषों को भी (उपदेश के द्वारा) पवित्र करते हैं। और जो आप से विमुख हैं वह पुरुष (आपही पवित्र) नहीं होते हैं फिर औरोंको पवित्र करैंगे यह तौ कहनाही असम्भवहै। किन्तु शास्त्रों के तात्पर्य्य को न जानकर भी अपने को बुद्धिमान माननेवाले उन पुरुषों को आप पशुओं की समान वेदवाणी से बांधने हो (अर्थात्) हे भगवन्! आपकी महिमा तो अचिन्त्य अनिर्वचनीय हैही परन्तु आपके भक्त भी सांसारिक पुरुषों को पवित्र कर देते हैं और जो आप के विषैं भक्ति नहीं करै हैं वह वेदविदित अश्वमेध ज्योतिष्टोमादि यज्ञों को करकै भी कर्मफल के भोगरूपी बन्धनमें बँधेहुए संसार में ही भ्रमै हैं मुक्तिको नहीं प्राप्त होय हैं॥

अवतरणिका—ऊपर की श्रुति में ईश्वर को सर्वव्यापक कहा है तहाँ शङ्का होय है की ईश्वर के सर्वव्यापक होने पर संसार के प्राणियों के करे हुए कर्म और कर्मफल ईश्वर को क्यों नहीं प्राप्त होय हैं तहाँ समाधन करैं हैं कि कर्म और कर्मफल तौ प्राकृत चक्षु आदि इन्द्रियों करकै युक्त जो प्राणी तिनकोही भोगना पड़ै है और ईश्वर तौ "आपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहरग्र्यं पुरुषम् पुराणाम्"। ईश्वर करचरणादिरहित है और सब वस्तुओं को ग्रहण करै है चक्षुः इन्द्रियरहित होकर भी सम्पूर्ण संसार को देखै है वह सब संसार को जानै है उसका भली प्रकार जाननेवाला कोई नहीं है वही सर्वाग्रणी पुराण पुरुष ईश्वर है। इत्यादि (श्रुतियों) के अनुसार कर्म और कर्मफल को ईश्वर नहीं भोगै है। इस कारण स्वतन्त्र सर्वशक्तिमान् नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव ईश्वर के विषैं शुभ की इच्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेवाले प्राणियों को भक्ति करना अत्यावश्यक है इसप्रकार वेद स्तुति करैं हैं—

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयाऽनिमिषाः । वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ १५ ॥

अन्वयः—(हे भगवन् !) त्वम् अकरणः (असि त्वम्) अखिलकारकशक्तिधरः (असि त्वम्) स्वराट् (असि अतः एव) अजया (सहिताः) विश्वसृजः अनिमिषाः (च) अखिलक्षितिपतेः बलिम् वर्षभुजः इव तव बलिम् उद्वहन्ति अपि च (प्रजाभिः दत्तम्) स्वयम् समदन्ति च तु ये यत्र अधिकृताः ते भवतः चकिताः (सन्तः) कार्यम् विदधति॥१५॥

अर्थः—हे भगवन् ! तुम (वास्तव में) चक्षुरादि इन्द्रियरहित हो । तौ भी तुम संपूर्ण इन्द्रियों की शक्तियों को धारण करो हो । तुम स्वतः प्रकाशवान् हो । इसीकारण (आपकी अचिन्तनीय अलौकिक शक्ति होने से) माया करकै सहित ब्रह्मादिक और इन्द्रादिक देवगण जिस प्रकार चक्रवर्ती राजा के अर्थ खण्ड देशों के राजा भेंट दैं हैं तिस प्रकार तुह्मारे अर्थ पूजा करैं हैं और प्रजाओं करकै दिये हुए हव्यादिरूप बलि को अपने आप भी ग्रहण करै हैं (अर्थात्) हे भगवन् ब्रह्मादिक देवता भी सृष्टि का कार्य्य आपके कृपाकटाक्ष सेही करैं हैं और आपकीही कृपा से वेदानुयायी पुरुषों करकै दिये हुए हव्यरूप बलि को ग्रहण करैं हैं ऐसे सर्वशक्तिमान जो आप तिनकी महिमा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को माया करकै मोहित अति तुच्छ जीव किस प्रकार जान सकै है) । १५ ॥

अवतरणिका—हे भगवन् ! केवल सेव्य सेवक भावही आपको भक्ति का प्रकार नहीं है किन्तु 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सर्व एत आत्मानो व्युच्चरन्ति"। जिस प्रकार अग्नि से छोटे २ अग्निकण उत्पन्न होते हैं तिसी प्रकार ईश्वर के सकाश सें संपूर्ण इन्द्रिय संपूर्ण लोक संपूर्ण देवता संपूर्ण महाभूत और संपूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं। इत्यादि श्रुतियों के अनुसार पिता पुत्र भाव से भी सब प्राणियों को पिता के समान सम दृष्टि से देखनेवाले जो आप तिन आप की भक्ति करना इसप्रकार वर्णन करते हुए वेद स्तुति करै हैं—

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः । न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विमुक्त ! ततः परस्य तव यदि अजया विहरः (भवति तदा तव) उदीक्षया उत्थनिमित्तयुजः स्थिरचरजातयः स्युः हि वियतः इव शून्यतुलाम् दधतः अपदस्य परमस्य (तव) कश्चित् परः न अपरः च न भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थः—हे सर्वदोषरहित ईश्वर ! माया से पर जो तुम तिन तुह्मारी यदि माया करकै विहार करने की इच्छा होय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है तब तुह्मारी दृष्टिमात्र से प्रकट हुए नाना प्रकार के कर्म्मों करकै युक्त स्थावर और जंगम शरीर धारण करनेवाले प्राणी उत्पन्न होंय हैं। निश्चय करकै आकाश की समान शून्य की तुल्यता को धारण करनेवाले सर्वदोषरहित परमदयालु जो तुम तिन तुह्मारा कोई पर या अपना नहीं होय है (अर्थात्) हे भगवन्! यद्यपि माया को अंगीकार कर अपनी रचना करी हुई सृष्टि में आप सबही प्राणीयों को समान दृष्टि से देखो हो तथापि तिन तिन प्राणियों को पूर्व्वजन्म के कर्म्मों के अनुसार आप न्यूनाधिक कर्म्मफल देओ हो ॥ १६ ॥

अवतरणिका—ऊपर इस प्रकार कहा है कि भगवन् के अंशरूपही अविद्योपाधिक जीव संसार से मुक्त होने की इच्छा से भगवद्भक्ति करते हैं। परन्तु न्यायशास्त्र के आचार्य्य कणाद ऋषि आदि का ऐसा मत है कि जीव को ईश्वर का अंश मानने से बद्ध मुक्त की व्यवस्था नहीं होयगी इस कारण जीव ईश्वर के अंश नहीं हैं किन्तु ईश्वर से भिन्न हैं इस मत को "यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपोभिन्ना बहुधैकोनुगच्छन्। उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोयमात्मा" जिस प्रकार तेजःस्वरूप एकही सूर्य्य भगवान् अनेक जल के पात्रों में अनेक रूप से प्रतीत होते हैं तिसी प्रकार ज्योतिःस्वरूप अजन्मा परमात्मा उपाधि के भेदों करके शरीरों के विषै अनेक प्रतीत होते हैं।

इत्यापि श्रुतियों के अनुसार खण्डन करते हुये वेदस्तुति करैं हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा । अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे ध्रुव ! यदि तनुभृतः अपरिमिताः ध्रुवाः सर्वगताः च (स्युः) तर्हि (त्वया) शास्यता न (स्यात्) इति नियमः (अपि) न (स्यात्) इतरथा (स्यात्) यत् यन्मयम् अजनि तत् (कारणत्वेन कार्य्यम्) अविमुच्य नियन्तृ भवेत् समम् (इति) अनुजानताम् यत् (मतम्) (तत्) मतदुष्टतया अमतम् ॥ १७ ॥

अर्थ—हे नित्यस्वरूप ईश्वर! यदि जीव संख्यारहित नित्य और विभु होयँ तो (तुम्हारी तुल्यता होने से) तुम करके उन जीवों की शिक्षा नहीं होय इसी कारण (यथायोग्य कर्म्म फल की प्राप्ति का) नियम भी नहीं होय और जीव को ईश्वर का अंश और अणुस्वरूप मानने से तो (तुम करके जीवों की शिक्षा और कर्मफल की प्राप्ति का नियम) होयगा । जो जीव रूप वस्तु जिस परमात्मारूप पदार्थ का विकारस्वरूप उत्पन्न हुआ है वह ईश्वररूप कारण उस अपने विकाररूप जीव को उपादान कारणरूप से त्याग न करके नियम करनेवाला होय है । ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है इस प्रकार केवल वाणी सेही कहनेवालों ने जिसको नहीं जाना है क्योंकि 'हम ब्रह्म को जानते हैं,' ऐसा कहने में श्रुति के अनुसार दोष होता है (अर्थात् वेदान्तशास्त्रका ऐसा अभिप्राय है कि भगवत् का अंश जीव है परन्तु कोई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मतवादी कहते हैं कि जीव को भगवत् का अंश मानने से अद्वैतमत में बद्धमुक्त की व्यवस्था नहीं रहैगी क्योंकि यदि अद्वैतमत में अविद्या एकही मानी जायगी तो जीव को भी भगवत् का अंश होने के कारण एकही मानने से एक की मुक्ति होने से सब का मोक्ष होना चाहिये और यदि कहो कि अविद्या अनेक हैं और जीव एक है और जिस शरीर करके (यच्छरीरावच्छेदेन) अविद्या से मुक्त होय है उस शरीर करके (तच्छरीरावच्छेदेन) जीव का मोक्ष हो जाता है तहां कहते हैं कि एक अंश करके जीव का मोक्ष होने पर भी द्वितीय अंश करके संसार वनाही रहैगा इस कारण जीव का मोक्षही नहीं होयगा जिस प्रकार कोई पुरुष सब अंगों में शृङ्खलाओं से बँधा हो उसके एक अङ्ग में से यदि शृङ्खला दूर कर दी जाय तो एक अङ्ग के मुक्त होने पर भी अन्य अङ्गो में बँधाही रहता है। इस कारण जीवों को ईश्वर का अंश न मानकर सर्वव्यापी और अनेक तथा नित्य मानना चाहिये क्योंकि जीव को नित्य और नाना मानने से एक की मुक्ति होने पर द्वितीय को मुक्ति होने की शङ्का तथा एक के बद्ध होने पर द्वितीय के बद्ध होने की शङ्का नहीं होयगी। इस कणाद आदि ऋषियों के मतानुसार शङ्काका वेदान्त के मतानुसार समाधान करते हैं कि जिस प्रकार जल से भरे हुए अनेक पात्रों में एकही सूर्य्य के अनेक प्रतिविम्ब पड़ते हैं और एक प्रतिविम्ब का दूसरा प्रतिविम्ब अंश नहीं होय है और एक प्रतिविम्ब का नाश होने पर भी अन्य प्रतिविंबोका नाश नहीं होय है तिसी प्रकार अविद्योपाधिक जीव ब्रह्म के प्रतिविम्ब हैं और जीव का दूसरा जीव अंश भी नहीं है जिससे एक अंश करके जीव का मोक्ष होने पर भी दूसरे अंश करके संसार बनाही रहे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि रीतियों से अद्वैतमत में बद्धमुक्त की व्यवस्था अनायासही सिद्ध है इस प्रकार जीवों को ब्रह्म से अभिन्न और ब्रह्म का विवर्त्तस्वरूप (अर्थात्) शुक्ति में रजत के भ्रमकी और रज्जुमें सर्पके भ्रम के समान मिथ्या) माननाही युक्तियुक्त है और ऊपर कहे हुये कणादादिकों के मत में दोष भी आवै है क्यों कि ऐसी श्रुति है कि "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जाननाम्" ईश्वर जीवों के अन्तःप्रविष्ट होकर शिक्षा करै है। और जीवों को सर्वव्यापी अनन्त तथा नित्य मानने से ईश्वर के द्वारा जीवों को शिक्षा नहीं हो सकेगी क्योंकि कणाद आदिकों को अभिमत विभुत्वादि जीव के गुणों के तुल्य ही यदि ईश्वर के भी गुण हुये तब जीव ईश्वर में समान गुणवत्ता होने से जीवों को शिक्षा देनेवाले ईश्वर नहीं हो सकैंगे। और "आत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरो यमयति" ईश्वर जीवों के अन्तःप्रविष्ट होकर प्रेरणा करते हैं। इस अन्तर्यामी ब्राह्मण की श्रुति के अनुसार अद्वैतमत में तो जीवों के उपादान कारण स्वरूप ईश्वर के द्वारा जीवों को शिक्षा होती है। जो ईश्वर सर्वत्र व्यापक है जिस ईश्वर को वही महात्मा जानते हैं जो शमदमादि सब साधन सम्पन्न होकर भी ऐसा निश्चय रखते हैं कि ईश्वर को जानना हमारे ज्ञान से साध्य नहीं है और जिस ईश्वर को "मैं जानूं हूं,' इस प्रकार कहनेवालों नें नहीं जाना है क्योंकि मैं जानूं हूं ऐसा कहने में जाननेवाला और जानने योग्य वस्तु इन दो पदार्थों की सिद्धि होने से द्वैतापत्ति होय है "यस्यामतं मतं तस्य मतं यस्य न वेद सः" जिस ब्रह्मज्ञानी की यह निश्चय है कि ब्रह्म वाणी और मन से परे है उसी ने ब्रह्म को जाना है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और जिस्को ऐसा निश्चय है कि मैंने ब्रह्म को जान लिया उसने नहीं जाना है इत्यादि श्रुतियें भी इस विषय कोही प्रतिपादन करती हैं परन्तु हे भगवन्! जो पुरुष स्थावर जङ्गमरूप सम्पूर्ण संसार को समदृष्टि से आपकाही स्वरूप जान आपके चरणकमलों के विषैं सच्चे मन से भक्ति करते हैं वह पुरुष अति कठिन से प्राप्त होने योग्य भी आपके स्वरूप को आपकी कृपादृष्टि से प्राप्त हो ही जाते हैं इसी प्रकार गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं अर्जुन के प्रति कहा है "नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥" हे अर्जुन! जिस मेरे स्वरूप को तैंने देखा है ऐसा मेरा स्वरूप वेदाध्ययन से नहीं दृष्टिगोचर होय है तप करके नहीं दृष्टिगोचर होय है दान से दृष्टिगोचर नहीं होय है यज्ञ से दृष्टिगोचर नहीं होय है किन्तु जब मेरी भक्तों के ऊपर कृपा दृष्टि होय है तबही इस स्वरूप का दर्शन होय है इत्यादि अनेक वाक्य केवल ईश्वर की कृपा सेही इस घोर संसाररूप दुःख से मुक्त होने का प्रतिपादन करैं हैं ॥ १७ ॥

अवतरणिका—ऊपर की श्रुतिमें ऐसा कहा है कि कारणस्वरूप ईश्वर के सकाश से प्रतिबिम्ब की समान जीवरूप कार्य्य उत्पन्न होते हैं तहां कहते हैं कि इस प्रकार कहने से जीव की कार्य्य होने के कारण अनित्यता होयगी क्योंकि संसार में जो कुछ कार्य्यस्वरूप देखने में आवै है सब अनित्य होय है और यदि जीव को अनित्य स्वीकार कर लिया जायगा तो कर्म्मों के भोगों का नियम नहीं होयगा क्योंकि अनित्य होने के कारण मर कर फिर वही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीव उत्पन्न नहीं होयगा । इस कारण एक जन्म में करे हुये कर्मों को फिर नहीं भोगैगा इस शङ्का का "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः ॥" जीव सत्वरजस्तमोगुण स्वरूप और संसार को उत्पन्न करनेवाली प्रकृति का शब्दादि विषयों के द्वारा सेवन करता हुआ निरन्तर मोह को प्राप्त रहै है । और जीव करके भोगी हुई उस प्रकृति का अजन्मा परमात्मा त्याग करै है प्रकृति में आसक्त नहीं होय है इत्यादि श्रुतियों के अनुसार समाधान करते हुये वेद स्तुति करैं हैं—

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् । त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ १८ ॥

अन्वयः—अजयोः प्रकृतिपूरुषयोः उद्भवः न घटते उभययुजा जलबुद्बुदवत् असुभृतः भवन्ति ततः ते इमे अर्णवे सरितः इव मधुनि अशेषरसाः (इव) परमे त्वयि विविधनामगुणैः (सह) लिल्युः ॥ १८ ॥

अर्थः—अजन्मा जो प्रकृति और पुरुष तिनका उत्पन्न होना नहीं हो सकै है । प्रकृति और पुरुष के योग से जल के बुलबुले की समान जीव उत्पन्न होते हैं । तिस कारण वह जीव समुद्र के विषैं नदियों की समान, शहद के विषैं संपूर्ण वृक्षों के रसों की समान, उपादान कारणरूप जो आप तिनके विषैं लीन हो जाते हैं (अर्थात्) कोई पुरुष ऐसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो शङ्का करैं हैं कि जीव को ईश्वर का कार्य्य मानने से जीव की अनित्यता होयगी और अनित्यता होने से कर्म्मों के भोग का नियम नहीं होयगा तहां समाधान करैं हैं कि पुरुष और अविद्या को वेदान्तशास्त्र में अनादि माना है इस कारण पुरुष और अविद्या का तो जन्म नहीं होय है किन्तु जिस प्रकार जल में मलादि का संसर्ग होय है तब वायु के चलने से बुलबुले उत्पन्न हो जाय हैं तिसी प्रकार सृष्टि की आदि में परमात्मा के विषैं प्रकृति का मिथ्या सम्बन्ध होय हैं और प्रकृति के विषैं परमात्मा का प्रतिविम्बरूप करके मिथ्या सम्बन्ध होय है तब प्रति जीव का अपने २ कर्म्मों के अनुसार लिङ्गशरीर उत्पन्न होय है वह जीवों का लिङ्ग-शरीर स्थूल शरीर के नाश होने पर कर्म्मों के आधीन ब-नाही रहै है और जिस प्रकार समुद्र के विषैं गङ्गा यमुनादि नदियें लीन होय हैं तब गङ्गा यमुनादि नाम भी नहीं रहते हैं (अर्थात्)वह गङ्गा यमुनादि नदियों का जल समुद्रस्व-रूप में हो जाय है तिसी प्रकार मोक्ष समय में जीव नाम और गुणों करके सहित ईश्वर के विषैं लीन होकर तदाकार हो जाय है । और जिस प्रकार शहद के विषैं अनेक वृक्षों के रस लीन होकर यद्यपि पृथक् पृथक् नहीं दीखै हैं परन्तु सामान्यतः तो रहतेही हैं तिसी प्रकार जब प्रलयकाल में ईश्वर के विषैं जीव लीन होय है तब यद्यपि नाम गुणों क-रके जीवों की विशेष प्रतीति नहीं होय है परन्तु अपने कर्म्मों के आधीन लिङ्गशरीररूप से रहतेही हैं और जब सृष्टि काल होय है तब फिर कर्म्माधीन लिङ्गशरीरों के द्वारा जीव स्थूल शरीरों को प्राप्त हो कर शुभाशुभ कर्म्मों के फलों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोगै है। सोई उपनिषद् वाक्य है—"यथा सौम्ये मधुकृतो मधुनिस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणां रसान् समवहारमेकतां संगमयन्ति ते यथा विवेकं न लभन्ते अमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोस्मीत्येवमेव खलु सौम्येमाः प्रजाः सतिसम्पद्य न विदुः सतिसम्पद्यामहे—हे साधो मधुमक्षिका शहद को उत्पन्न करैं हैं तब अनेक वृक्षों के रसों को लाकर शहदरूप कर दे हैं तब जिस प्रकार यह अमुक वृक्षका रस है यह अमुक वृक्षका रस है ऐसा भेद नहीं रहै है तिसी प्रकार प्रलयकाल में सम्पूर्ण प्रजा ईश्वर के विषैं अपने लिङ्ग-शरीरों के द्वारा लीन होकर अपने स्वरूप को नहीं जानै हैं। और "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्ति नाम रूपे विहाय तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति-दिव्यम्—जिसप्रकार बहती हुई सम्पूर्ण नदियें समुद्र को प्राप्त होकर नामरूप को छोड़कर लीन हो जाय हैं तिसी प्रकार मोक्ष समय में भगवद्भक्त नाम और रूप को छोड़ कर दिव्य स्वरूप परमात्मा के विषैं लीन होकर फिर जन्ममरण को नहीं प्राप्त होते हैं इस कारण जीव में अनित्यतारूप दोष नहीं आवै है किन्तु जीव नित्यस्वरूपही है। इस प्रकार जीव ईश्वर के विषय को जानकर जो पुरुष निर्विकार ईश्वर के विषय भक्ति करते हैं वह परमपद को प्राप्त होते हैं१८

अवतरणिका—ऊपर की श्रुति में ऐसा सिद्ध होय है कि ईश्वर की आज्ञा के अनुसार अपने पूर्वजन्म के कर्म्मों को जीव भोगै हैं और प्रलयकाल में अपने कर्म्मों के सहित ईश्वर के विषय लीन होय है और सृष्टि काल मे फिर अपने अपने कर्म्मों के आधान देहधारण करके कर्मों को भोगै है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार वारम्वार संसार चक्र में घूमै है। जीवों के इस बन्धन को दूर करने के निमित्त "परीत्य भूतानि परीत्य भूलोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसम्विवेश"। कोई मुमुक्ष पुरुष सव प्राणियों में आत्मा एकही जानकर और स्वर्गादि लोकों को कर्मजन्य होने के कारण अनित्य जानकर तथा ऐहिक सव दिशा प्रदिशा आदि पदार्थों को अनित्य जानकर वेद का सेवन कर मन से परमेश्वर के स्वरूप का स्मरण करता हुआ परमेश्वर के विषैं लीन हो गया। इत्यादि श्रुतियों के अनुसार भगवद्भक्ति का उपदेश करते हुये वेद स्तुति करैं हैं—

नृषु तव मायया भ्रममभोष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियो ऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्। कथमनुवर्त्ततां भवभयं तव यद् भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥ १९ ॥

अन्वय—(हे भगवन्)! सुधियः अमीषु नृषु तव मायया (कृतम्) अनुप्रभवम् भ्रमम् अवगत्य अभवे त्वयि भृशम् भावम् दधति (तत् त्वाम्) अनुवर्त्तताम् भवभयम् कथम् (स्यात्) यत् तव भ्रुकुटिः त्रिणेमिः अभवच्छरणेषु (एव) मुहुः भयम् सृजति ॥ १९ ॥

अर्थः—हे भगवन्! ज्ञानी पुरुष इन मनुष्य आदि योनियों के विषैं तुह्मारी माया करकै करे हुए अति कठिन से दूर होने योग्य प्रतिक्षण में वृद्धि को प्राप्त होनेवाले देहाभिमारूप भ्रम को जानकर संसाररूपी समुद्र से पार करनेवाले जो तुम तिन तुह्मारे विषैंही अत्यन्त दृढ़ भक्ति करते हैं। सो आपको शरण प्राप्त होनेवालों को संसार का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भय किस प्रकार हो सकै है। क्योंकि आपकी भ्रकुटिरूप काल आपकी भक्ति से शून्य पुरुषोंही के विषैंही वारम्वार संसार के भय को उत्पन्न करता है(अर्थात्) हे भगवन्! जो सत्पुरुष इस संसार के सुखों को मिथ्या जानकर केवल आप के चरणकमलों को प्रेमपूर्वक सेवन करते हैं वह अलभ्य मुक्ति-रूप पदार्थ को प्राप्त हो जाते हैं और जो पुरुष आपकी भक्ति के स्वाद को न लेकर सांसारिक सुखों कोही सर्वस्व मानते हैं वह वारम्वार इस संसार में जन्म लेते हैं और मरण को प्राप्त होते हैं) ॥ १९ ॥

अवतरणिका:—ऊपर की श्रुति में ऐसा कहा है कि भगवद्भक्ति से जन्ममरण रूप संसार की निवृत्ति होती है। सो वह भगवद्भक्ति मन के स्वाधीन हुये विना नहीं होय है और मन की स्वाधीनता गुरु की भक्ति बिना करैं नहीं होय है इस कारण गुरु के विषैं श्रद्धापूर्वक भक्ति करने का "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् आचार्य्यवान् पुरुषो वेद"—मुमुक्षु पुरुष ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के निमित्त फल पुष्पादि लेकर वेद शास्त्रादि के जाननेवाले ब्रह्मवेत्ता गुरु के समीप जाय क्योंकि इसप्रकार करनेवाला पुरुषही श्रेष्ठ गुरु को प्राप्त होकर परमात्मा को जानै है। इत्यादि श्रुतियों के अनुसार गुरुभक्ति का उपदेश करते हुए वेद स्तुति करते हैं—

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं य इह यतन्ति यन्तु मतिलोलमुपायखिदः। व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ॥ २० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—हे अज ! ये गुरोः चरणम् समवहाय अतिलोलम् विजितहृषीकवायुभिः (अपि) अदान्तमनस्तुरगम् यन्तुम् यतन्ति (ते) व्यसनशतान्विताः उपायखिदः (च) (सन्तः) इह जलधौ अकृतकर्णधराः वणिजः इव सन्ति२०

अर्थः—हे अजन्मा ईश्वर ! जो पुरुष गुरु के चरणकमलों को सेवन न करकै अति चलायमान इन्द्रिय और प्राणों को वशमें करने वालों करकै भी जो वश में नहीं होय है ऐसे मनरूपी चञ्चल घोड़े को वश में करने के निनित्त यत्न करते हैं वह पुरुष सैंकड़ों विघ्नों से युक्त हो उपाय करते समय खेद को प्राप्त होते हुए इस संसार में जिस प्रकार समुद्र में विना मलाह के व्यापारी पुरुप (मार्ग को नहीं प्राप्त होते हैं) तिसी प्रकार अज्ञानवश भ्रमते रहते हैं (अर्थात्) यद्यपि किसी प्रकार इन्द्रिय और प्राण को जीत लिया जाय तौ जीत लिया जाय परन्तु "चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि वलवद्दृढ़म् । तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्" इस श्लोक में भगवान् से अर्जुन ने प्रार्थना करी है कि हे कृष्ण ! मन अत्यन्तही चञ्चल है जिस प्रकार वायु को वश में करना अति कठिन है तिसी प्रकार मन को भी जीतना अति कठिन है । इसकारण गुरु की भक्ति और ईश्वर की कृपादृष्टि के विना मन वश में नहीं होता है सोई कहा है "यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः" ॥ जिसकी देवताओं के विषैं परम भक्ति होती है और तिसी प्रकार गुरूकी भक्ति होती है उसही महात्मा पुरुष को गुरु करकै कहे हुए गूढ़ अभिप्रायों का यथार्थ प्रकाश होता है इसकारण अनेक क्लेशों से भरे हुए इस संसार से छूटने की इच्छा करनेवाले पुरुषों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मार्थ काम मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों का साधन और पंचम पुरुषार्थरूप भगवद्भक्ति की प्राप्ति के निमित्त गुरु के विषैं अनन्य प्रीति कर मन को स्वाधीन करना अत्यन्त आ-आवश्यक है ॥ २० ॥

अवतरणिका—सत्सङ्गहीन मलिन अन्तःकरणवाले पुरुष, स्त्री पुत्र आदि कोही सर्वस्व मानिकर अपने आयुर्बल को वृथा व्यतीत करकै वारम्वार जन्ममरण को प्राप्त होते हुए संसारमें भ्रमते रहते हैं उन पुरुषों के दुःख दूर करने के निमित्त "अथ मर्त्यो ऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" जब पुरुष के हृदय की संपूर्ण वासना दूर हो जाती हैं तदनन्तर यह जीव मोक्ष को प्राप्त होय है और इस जन्म में ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर परमानन्द को प्राप्त होता है। इत्यादि श्रुतियों के अनुसा स्त्री पुत्रादि की अनित्याता को दिखा-कर सर्वदा एक रस नित्य भगवान् को ही भक्ति के द्वारा अपना जानना चाहिये इस प्रकार वर्णन करते हुए वेद स्तुति करै हैं—

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्त्वयि सति
किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे। इति सदजा-
नतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति को न्विह
स्वविहते स्वनिरस्तभगः ॥ २१ ॥

अन्वयः—(हे भगवन्! त्वाम्) श्रयतः (पुंसः) सर्व-रसे आत्मनि त्वयि सति स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैः किम्? (इति) सत् अजानताम् मिथुनतः रतये चरताम् नृणाम् स्वविहते इह स्वनिरस्तभगः कः नु सुखयति ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—हे भगवन्! तुह्मारी भक्ति करनेवाले पुरुष को सब सुखों के स्थान परमात्मा जो आप तिन तुह्मारे होते अपने पुत्र देह स्त्री धन स्थान भूमि प्राण और रथ इत्यादि अनित्य वस्तुओं से क्या प्रयोजन है?। जो इस परमसुख को न जानकर स्त्री के साथ कामविलास के निमित्त मग्न रहते हैं उन मनुष्यों को स्वयं नाशवान् इस संसार में कौन असार पदार्थ सुख देता है (अर्थात् हे भगवन्! इस असार संसार में आपको छोड़कर कोई अपना नहीं है जो पुरुष आपकी भक्ति न करके सांसारिक विषयों में मग्न रहते हैं वह कदापि सुख को नहीं प्राप्त होते हैं इस कारण अनन्त सुख की इच्छा करनेवाले पुरुषों को योग्य है कि इस क्षणिक सुख को अनित्य जान भगवद्भक्तिरूप नित्य सुख की प्राप्ति अवश्य करैं) ॥ २१ ॥

अवतरनीका—गुरु के उपदेश से मन को स्वाधीन कर संसार में असार और सारभूत पदार्थों को विचार करके असारभूत संसार से मन को विरक्त करके सत्संग के द्वारा अलभ्य भगवद्भक्ति की प्राप्ति के निमित्त भगवद्भक्त सत्पुरुषों को ढूंढे इस प्रकार "परीक्ष्य लोकान् कर्म्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्" विचार करके भूर्लोक आदि लोकों को अनित्य जान कर ब्रह्मज्ञान की इच्छा करनेवाले मुमुक्षु पुरुष को योग्य है कि वैराग्य को प्राप्त हो जाय—

इत्यादि श्रुतियों के अनुसार उपदेश करते हुये वेद स्तुति करैं हैं—

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदंघ्रिजलाः ॥ दधति स-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रुन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ २२ ॥

अन्वयः—(हे भगवन् !) भवत्पदाम्बुजहृदः विमदाः उत अघभिदंघ्रिजलाः(ये)ऋषयः (सन्ति). ते अपि भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनानि उपासते (यतः) ये नित्यसुखे आत्मनि त्वयि सकृत् मनः दधति (ते) (अपि) पुनः पुरुषसारहरावसथान् न (उपासते किम् पुनः ते) ॥ २२ ॥

अर्थः—हे भगवन् ! निरहङ्कार होकर आपके चरणकमलों का हृदय में ध्यान करनेवाले जिन के चरणों का जल और पुरुषों के पापों का भी नाश कर देता है ऐसे जो मुनि हैं वह भी पृथ्वी के विषैं अत्यन्त पवित्र गङ्गा आदि तीर्थ और काशी वृन्दावनादि धामों के विषैं महात्माओं के आश्रमों को सेवन करते हैं । क्योंकि जो पुरुष नित्य सुखस्वरूप आत्मा जो तुम तिन तुह्मारे विषैं एकवार भी मन लगाते हैं वह तुह्मारे जन फिर पुरुषों के ज्ञान धैर्य आदि के हरनेवाले गृहों को आसक्तिपूर्वक सेवन नहीं करते हैं (फिर शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनि लोगों का तो कहना ही क्या है) (अर्थात्) हे भगवन् ! जो पुरुष एकवार भी आपके विषैं चित्त लगाकर आपकी भक्ति करते हैं वह फिर ज्ञान धैर्य आदि को हरण करलेनेवाले देह गेह स्त्री पुत्रादि के विषैं आसक्त नहीं होते हैं और हे भगवन् ! जिनके चरणों का जल अन्य पुरुषों को पवित्र कर देता है ऐसे आपके चरणकमलों को हृदय में धारण करनेवाले आपके जो परम भक्त हैं वह तो आपकी भक्तिरूप रस का पान करके इस असार संसार को मिथ्या जान परमानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को प्राप्त होते हुये आपकोही प्राप्त हो जाते हैं ऐसे भगवद्-भक्तों का सत्संग करना मुमुक्षु पुरुषों को परमावश्यक है॥२२॥

अवतरणिका—यहां पर्य्यन्त इस प्रकार वर्णन करा कि भक्ति और ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त पुरुष उपाय करैं और सम्पूर्ण संसार को ईश्वररूप सेही देखैं इस प्रकार वेद उपदेश करते हैं। परन्तु पूर्वमीमांसा के आचार्य्यों का ऐसा अभिप्राय है कि संपूर्ण वेद कर्म्मकाण्ड काही प्रतिपादन करते हैं यदि कहो "सोऽरोदीत्तद्रोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्, तत्वमसि।" इत्यादि वाक्य तौ कर्मकाण्ड का प्रतिपादन नहीं करते हैं इसकारण इन वेद वाक्यों को निरर्थक स्वीकार करना पड़ैगा तहाँ कहते हैं कि जिन वाक्यों में कर्म्मकाण्ड का विषय नहीं है उनका कर्मकाण्ड के प्रतिपादन करनेवाले वाक्यों के साथ समन्वय करना चाहिये (अर्थात् "सोऽरोदीत्तद्रोदीत्तद्रुद्रस्यरुद्रत्वम्—शिव जी महाराज ने रुदन किया इसकारण उनका नाम रुद्र हुआ और उन आंसुओं से चाँदी उत्पन्न हुई" इस श्रुति का "बर्हिषिरजतं न देयम्" यज्ञ में चांदी न देय॥ इस श्रुति के साथ समन्वय करै (अर्थात् यज्ञ में चाँदी के देने का इसकारण निषेध किया है कि चाँदी शिवजी के रुदन करते समय आंसुओं से उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार "तत्वमसि" इस उपनिषद् वाक्य का भी यज्ञ के अङ्गभूत यजमान की प्रशंसा करने में तात्पर्य्य है और निर्विशेष ब्रह्म के प्रतिपादन करने में नहीं तहाँ कहते हैं कि इस प्रकार मीमांसकों का कहना कदापि नहीं होसक्ता क्योंकि "अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स शृणोत्यकर्णः, सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म" ब्रह्म बिना हस्त-चरणादि के हस्तचरणादि का कार्य्य करै है बिना नेत्रों के देखै है, विना कर्णों के श्रवण करै है, ब्रह्म सत्यस्वरूप ज्ञान-स्वरूप और आनन्दस्वरूप है" इत्यादि उपनिषदों के वाक्यों का यजमान की प्रशंसा करने में तात्पर्य्य नहीं होसक्ता क्योंकि यजमान कदापि बिना हाथपैरों के हाथपैरों का कार्य्य नहीं कर सकै है यजमान नेत्र कान आदि इन्द्रियों हीन नहीं होय है यजमान सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप नहीं होता है इसकारण "तत्वमसि" आदि उपनिषद् वाक्यों का यजमान की प्रशंसा में तात्पर्य्य नहीं होता है। किन्तु यजमान से विलक्षण निर्विशेष ब्रह्मकाही प्रतिपादन करनेमे तात्पर्य्य है और यदि द्वैत सिद्ध होय तौ उपनिषद् वाक्य यजमान की प्रशंसा करते हैं ऐसा कहना बन सक्ता है क्योंकि कर्म करना विना द्वैतके नहीं होसक्ता इस शंका का समाधान करने को मीमांसक "सत इदमुत्थितम्"॥

इत्यादि श्रुति में द्वैत को सिद्ध करते हैं और द्वैतमत को साधनेवाले मीमांसकों के मत को अनेक प्रकार से खण्डन करते हुए वेद स्तुति करैं हैं—

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक्। व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजड़ान् ॥ २३ ॥

अन्वयः—इदम् सत् (यतः) सतः उत्थितम् इति चेत् ननु तर्कहतम् क्व च व्यभिचरति क्व च मृषा उभययुक् तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न (भवति) अन्धपरम्परया व्यवहृतये विकल्पः इषितः ते भारती उरुवृत्तिभिः उक्थजड़ान् भ्रमयति ॥ २३ ॥

अर्थः—मीमांसक द्वैत के सिद्ध करने के लिये संसार को सत् सिद्ध करते हैं कि "यह संसार सत् है क्योंकि सत् जो ब्रह्म तिससे उत्पन्न हुआ है जो वस्तु जिससे उत्पन्न होता है वह उसकाही स्वरूप होता है। जैसै सुवर्ण से उत्पन्न हुए कटककुण्डल आदि भूषण सुवर्ण के स्वरूपही होते हैं तिसी प्रकार सत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ यह संसार भी सत् ही होयगा अद्वैतपक्ष—संसार सत् से उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहने से तौ संसार सत् सिद्ध नहीं होता है किन्तु असत्ही सिद्ध होता है क्योंकि ऐसा कहने में दो पदार्थ प्रतीत होते हैं, एक तौ जिससे उत्पन्न होय दूसरा जो उत्पन्न हुआ और जिससे जो उत्पन्न होता है वह उससे जुदा होता है इसकारण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ संसार सत्स्वरूप ब्रह्म से जुदा होने से असत् स्वरूप है। द्वैतपक्ष—यह नहीं कहते हैं, ब्रह्म का और संसार का अभेद है किन्तु यह कहते हैं कि ब्रह्म का और संसार का भेद नहीं है जिस प्रकार मृत्तिका से उत्पन्न हुए घट शराव आदि पात्र और मृत्तिका का भेद नहीं होता है तिसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न हुए संसार और ब्रह्म का भेद नहीं है। अद्वैतपक्ष—जो जिससे उत्पन्न होता है वह उससे भिन्न नहीं होता है ऐसा कहने में भी कहीं कहीं व्यभिचार देखने में आवै है क्योंकि पिता से पुत्र उत्पन्न होता है तौ भी पिता से पुत्र भिन्न प्रकृतिवाला ही देखने में आवै है इसीप्रकार यदि किसी घड़े को मुद्गर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से तोड़ दिया जाय तौ वह घड़े का नाश मुद्गर से उत्पन्न होता है तौ भी घड़े का नाश मुद्गररूप नहीं होता है किन्तु मुद्गर से भिन्न होता है। द्वैतपक्ष—यद्यपि निमित्तकारणरूप पिता से उत्पन्न हुए पुत्र का पिता से भेद होता है और निमित्तही कारणरूप मुद्गर से उत्पन्न हुए घटनाश का भी मुद्गर से भेद होता है परन्तु उपादानकारण से उत्पन्न हुआ पदार्थ उपादानकारण से जुदा नहीं होता है। इसीकारण उपादानकारण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ यह संसार अपने उपादानकारण सत्स्वरूप ब्रह्म से जुदा नहीं है। अद्वैतपक्ष—उपादान कारण से उत्पन्न होनेवाला पदार्थ अपने उपादान कारण से भिन्न नहीं होता है यह बात भी ठीक नहीं है क्योंकि जब अन्धकार मे पड़ी हुई रज्जु में भ्रान्ति से सर्प का ज्ञान होता है उस समय भ्रान्तिकल्पित सर्प का उपादानकारण रज्जु होती है तौ भी अपने उपादानकारण रज्जु से सर्प भिन्न होय है। द्वैतपक्ष—जहाँ रज्जु में सर्प की भ्रान्ति होय है तहाँ सर्प का उपादान कारण केवल रज्जु नहीं होय है किन्तु अन्धकार से उत्पन्न अज्ञान और रज्जु दोनों कारण होय हैं इसकारण भ्रमकल्पित सर्प अपने उपादान कारण रज्जु से भिन्न होय है परन्तु जो शुद्ध उपादानकारण से उत्पन्न होय है वह वस्तु अपने उपादानकारण से भिन्न नहीं होय है॥ अद्वैतपक्ष—यदि ऐसा माना जायगा कि उपादानकारण और अज्ञान दोनों से उत्पन्न हुई वस्तु अपने उपादानकारण से भिन्न होती है तब तौ संसार कदापि सत् सिद्ध नहीं होयगा क्योंकि संसार केवल शुद्ध ब्रह्म सेही उत्पन्न नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होय है किन्तु ब्रह्म और अविद्यारूप उपाधि दोनों से उत्पन्न होय है इस कारण रज्जु में सर्प के भ्रम की समान होने से संसार भी सत् नहीं होयगा। **द्वैतपक्ष**—यद्यपि यह संसार इसप्रकार सत् सिद्ध नहीं होता है परन्तु और रीति से सत् सिद्ध होता है सो दिखाते हैं—यह संसार सत् है क्योंकि संसार से कार्य्य होते हैं। जो वस्तु सत् नहीं होती है उससे कार्य नहीं होता है जैसे सीपी मे रजत सत् नहीं है इसकारण सीपी के रजत से रूप्य का काम नहीं चलै है। और संसार में तौ जल भरने रूप कार्य्य से जल की प्राप्ति होय है खेती करने रूप कार्य से अन्न की प्राप्ति होय है इसकारण यह संसार सत् है। **अद्वैतपक्ष**—जिससे कार्य होय वह वस्तु सत्ही होय ऐसा नियम भी नहीं है क्योंकि कपट करके कल्पित खोटे रुपये से भी कहीं कहीं व्यवहाररूप कार्य हो जाता है परन्तु वह कपट का रुपया सत् नहीं होय है क्योंकि जब किसी यथार्थ जानने वाले परीक्षक के पास खोटा रुपया जाय है तब वह तुरन्तही खोटा जानकर फैंक देय है कदापि उस रुपये को सत्य नहीं जानै है सो संसार से कार्य होय है इसकारण संसार सत् है यह भी कहना नहीं बनता और जिसप्रकार किसी अंधे ने किसी दूसरे अन्धे से झूंठ कह दिया कि इस वृक्ष पर प्रेत रहता है उसने और से कहा इसप्रकार सर्वत्र उस झूंठी बात का प्रचार होजाय है कि वृक्ष पर प्रेत रहता है वस्तुवः वृक्ष पर प्रेत नहीं था इसीप्रकार भ्रमकल्पित द्वैत भी व्यवहार के निमित्त माना जाय है वस्तुतः द्वैत नहीं है। **द्वैतपक्ष**—जो वस्तु एक जगह सत्य देखी हुई होय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है तौ उसका दूसरे स्थान में भ्रम होय है जिस प्रकार पहले किसी स्थान में सत्य रजत को देख लिया होय है तब सीपी मे दूर से रजत का भ्रम होय है। जो वस्तु कभी भी सत् नहीं देखी होय है उस्का भ्रम कभी भी नहीं होय है क्योंकि अत्यन्त असत् आकाशपुष्प का भ्रम कभी भी नहीं देखने में आवै है। इसकारण यदि द्वैत को भ्रम कल्पित माना जायगा तौ कहीं सत् मानना पड़ैगा और कहीं असत् मानना पड़ैगा तौ सर्वत्र अद्वैत सिद्ध नहीं होयगा। अद्वैतपक्ष—इस बात की कोई अवश्यकता नहीं है कि जिस वस्तु को एक स्थान में सत्य देखा हो उसी का अन्यस्थान में भ्रम होय किन्तु जिस वस्तु का भ्रम से पहिले संस्कार होता है उस वस्तु का भ्रम होता है वह संस्कार सत् हो या असत् हो जैसे जिस पुरुष ने कभी भी आम का वृक्ष न देखा होय वह पुरुष यदि वाजीगर के वनाये हुए असत् वृक्ष को भी देख लेय है तौ उसको भी अशोक के वृक्ष में आम के वृक्ष का सन्देह होता है इसकारण यह कहना नहीं वन सक्ता कि जिसको एक स्थान मे सत् देख लिया होय उसकीही दूसरे स्थान में भ्रान्ति होती है। इसकारण इसप्रकार मानना चाहिये कि यह भ्रमकल्पित द्वैत की प्रतीति अन्धपरम्परा करकै चिरकाल से चली आवै है वस्तुतः द्वैत सत् नहीं है। द्वैतपक्ष—वेद में ऐसी श्रुति है कि "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति" चातुर्मास्य यज्ञ करने वाले को अक्षयपुण्य की प्राप्ति होती है। इस श्रुति से कर्मफल की नित्यता और सत्यता को वेद प्रतिपादन करते हैं इसप्रकार कर्मफल की नित्यता और सत्यता होने से द्वैत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की सत्यता सिद्ध हो जायगी ॥ अद्वैतपक्ष—वेद वस्तुतः कर्म्मफल की नित्यता और सत्यता का प्रतिपादन नहीं करते हैं किन्तु कर्मफल की प्रशंसा करते हैं क्योंकि यदि वेद का कर्म्मफल की सत्यता और नित्यता में तात्पर्य्य होता तौ "यथेह कर्म्मचितो लोकः क्षीयते तथामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" जिस प्रकार इस लोक मे परिश्रम• से प्राप्त किये हुए गृह आदि पदार्थ नष्ट हो जाते हैं तिसी प्रकार परलोक मे पुण्य से प्राप्त हुए स्वर्गादि के पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं। इसप्रकार वेद अपने विरुद्धही किस प्रकार प्रतिपादन करते। इसकारण हे भगवन्! जिनकी बुद्धि केवल कर्मकाण्ड के ही विषैं मग्न हो रही है भक्ति वैराग्य के लेश को भी नहीं जानै हैं उन पुरुषों को ही आप की वेदवाणी कर्म्मों के जाल में बाँधकर भ्रमाती रहती है। और संसार से विरक्त जो आपके भक्त तिनको वह वेदवाणी मोहित नहीं कर सकै है क्योंकि वह आपके भक्त आपकी कृपादृष्टि से वेद के यथार्थ तात्पर्य्यों को जानलेते हैं (अर्थात् कर्म्मकाण्ड के आचार्य यद्यपि द्वैत को सत्य करने के अर्थ नाना प्रकार की युक्ति देते हैं और अपने अनुकूल अर्थ कहकर द्वैत की सत्यता में श्रुतियों का भी प्रमाण देते हैं परन्तु वास्तव मे उन युक्तियों से द्वैत सिद्ध कदापि नहीं होता है, क्योंकि वास्तव में तौ वेद की श्रुति द्वैत का प्रतिपादन नहीं करै है इसकारण जो पुरुष भ्रमकल्पित संसार को असार जान भक्तों का उद्धार करनेवाले अद्वितीय ईश्वर के विषैं अनन्यभाव करके भक्ति करते हैं वह पुरुष इस कर्मजाल से छूटकर परमपद को प्राप्त होवे हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवतरणिका—ऊपर की श्रुति में भ्रमकल्पित संसार को सत् माननेवाले मीमांसकों के मत का अनेक प्रकार से खण्डन किया अब "आत्मा वा इदमेक एव अग्र आसीत्, वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम्" सृष्टि की आदिमें एक परमेश्वरही थे, घट आदि विकार केवल नाम मात्रही हैं। केवल वाणी से व्यवहार मात्रही किया जाय है वास्तव में सत् नहीं है। वास्तव में केवल मृत्तिकाही सत् है इसी प्रकार ईश्वरातिरिक्त संपूर्ण संसार असत् है ब्रह्मही सत् है इत्यादि श्रुतियों के अनुसार जगत् को असत् सिद्ध करते हुये वेद सत् स्वरूप ईश्वर की स्तुति करैं हैं—

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनु-
मितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे। अत उप-
मीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविला-
समृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥ २४ ॥

अन्वयः—यत् इदम् अग्रे न आस (च) निधनात् अनु न भविष्यत् अतः अन्तरा एकरसे त्वयि मृषा विभाति (इति) मितम् (अतः एव) द्रविणजातिविकल्पपथैः उपमीयते वितथम् मनोविलासम् (ये) ऋतम् अवयन्ति (ते) अबुधाः ॥ २४ ॥

अर्थः—जो यह द्वैतभाव दीखै है सो सृष्टि से पहिले नहीं था और प्रलय के अनन्तर भी नहीं होयगा इस कारण बीच में भी आप जो एकरस हो तिन आपके विषें (द्वैतभाव) मिथ्या प्रतीति होय है ऐसा निश्चय किया गया है इस कारणही सुवर्णमृत्तिका आदि द्रव्यों के विकार कट-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ककुण्डल घट शराव आदि के समान कल्पना करा हुआ जाना जाय है। (इस कारण) मिथ्याभूत मन से कल्पना किये हुये द्वैतभाव को जो पुरुष सत्य मानै हैं वह विचार-शून्य हैं। (अर्थात् जिस प्रकार मृत्तिका के घट शराव आदि सुवर्ण के कटककुण्डलादि अनेक विकार हैं परन्तु सब नाम मात्र कल्पना किये हुयेही हैं। वस्तुतः मृत्तिका और सुवर्णही सत् हैं इसी प्रकार संसार में जो कुछ कल्पित द्वैतभाव देखने में आवै है वह केवल नाम मात्र कल्पना करा हुआही है वास्तव में ब्रह्मही सत् है इस कारण जो अविचारी पुरुष द्वैतभाव करके संसार को सत् मानै हैं वह पुरुष वारम्बार इस घोर संसार में कर्म्मफलों को भोगते हुये मरण को प्राप्त होते हैं और जन्म लेते हैं तथा जो पुरुष शास्त्र के विचार और महात्माओं के उपदेश के अनुसार संसार को असार जान सारभूत ईश्वर के विषैं भक्ति करते हैं वह पुरुष संसार के भयों से छूटकर परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

अवतरणिका—इस ऊपर की श्रुति में ऐसा कहा है कि यह प्रपञ्चकल्पना किया हुआ नाम मात्रही है तहां कहते हैं कि यदि प्रपञ्च असत् है तौ चेतन जो जीव और प्रपञ्च इन दोनोका सम्बन्ध भी कल्पित माना जायगा और यदि जीव और प्रपञ्च का सम्वन्ध कल्पित है तो जिस प्रकार ईश्वर संसार के दोषों से शून्य है तिसी प्रकार जीवात्मा भी संसार के दोषों से निर्लेप होना चाहिये और मिथ्या कल्पित कर्म्मों के अनुसार संसार मे वारम्वार जीवात्मा का जन्म भी नहीं होना चाहिये। इस शङ्का का "द्वा सुपर्णा सयुजा सखा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्न-न्नन्यो अभिचाकशीति" जीव और ईश्वर दोनों शुभगति-वाले हैं जीव प्रतिबिम्बस्वरूप है ईश्वर बिम्बरूप है जीव उ-पकार के योग्य है ईश्वर उपकारक है जीव शरीर में प्रविष्ट रहै है ईश्वर प्रेरणा करै है जीव कर्मफल को अज्ञानवश सुख मानकर भोगै है नित्य मुक्त ईश्वर कर्मफल को नहीं भोग-कर चैतन्यस्वरूप करके विराजमान होय है" इत्यादि श्रु-तियों के अनुसार समाधान करते हुये वेद स्तुति करते हैं—

स यदजयात्वजामनुशयीत गुणाँश्चजुषन्भजति
सरूपतां तदनुमृत्युमपेतभगः । त्वमुत जहासि ता-
महिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसे ऽष्टगुणिते
ऽपरिमेयभगः ॥ २५ ॥

अन्वयः—यत् सः तु अजया (मोहितः) अजाम् अ-नशयीत (ततः) सरूपताम् भजति तदनुगुणान् च जुषन् अ-पेतभगः (सन्) मृत्युम् (भजति) उत त्वम् (तु) अहिः, त्वचम् इव ताम् जहासि आत्तभगः (सन्) अष्टगुणिते महसि महीयसे अपरिमेयभगः (असि) ॥ २५ ॥

अर्थः—जो जीव है वह तो माया से मोहित होकर देव मनुष्यादि देहों को धारण करता है तदनन्तर तत्स्वरूप हो-जाता है तदनन्तर रूपरसादि विषयों को सेवन करता है और ज्ञान ऐश्वर्यादि गुणहीन होकर मृत्युको प्राप्त हो जाता है और हे ईश्वर ! तुम तौ जिसप्रकार सर्प अपनी केंचली को त्यागै है तिसीप्रकार माया को त्याग करो हो । और नित्यज्ञानादि गुणयुक्त होकर अणिमादि आठ सिद्धियुक्त हो परमानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूप के विषैं विराजमान रहते हौ आप परिपूर्ण ऐश्वर्य-युक्त हो (अर्थात् हे भगवन्! यह जीव तौ आपकी माया से मोहित होकर अनेकप्रकारकी नीच योनियों के विषैं भ्रमै है कदाचित् आपकी कृपादृष्टि होने से मनुष्य आदि योनियों को प्राप्त होय है फिर भी यह पुरुष देह गेह आदि के अनेक अभिमान करै है। विषयों में लीन होने के कारण ज्ञान धैर्य्य आदि हीन होजाय है तब संसार में वारम्वार जन्ममरण को प्राप्त होय है और आपतौ माया से पर नित्यज्ञानादि गुणयुक्त एकरस हो इस कारण आप संसार के दोषों से दूरही रहो हो) ॥ २५ ॥

अवतरणिका—यहाँ पर्य्यन्त ऐसा कहा कि जो पुरुष ईश्वर के विषैं भक्ति करते हैं वह पुरुष संसाररूपी बन्धन से छूट जाते हैं और जो पुरुष अज्ञानवश भगवद्भक्ति न करकै संसार की वासनाओं मे फँसे रहते हैं वह वारम्वार संसार में जन्ममरण को प्राप्त होते हैं। अब इस बात को वर्णन करते हैं कि जो पुरुष लोकप्रतिष्ठा आदि किसी कारण से बाहर की लोकवासना को त्यागकर भी चित्त से संसार की वासनाओं में लीन रहते हैं वह पुरुष केवल मोक्ष कोही नहीं प्राप्त होते यह नहीं किन्तु संसार में अनेक दुःखों कोभी प्राप्त होते हैं और मरण के अनन्तर कुकुरादि की योनियों को भी वारम्वार प्राप्त होते हुए नरक की समान दुःखों को प्राप्त होते हैं। उन पुरुषों की दशा का "कामान्यः कामयते मन्यमानः स कर्म्मभिर्जायये तत्र तत्र पर्य्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः" जो पुरुष विषयों को दोष न जानकर गुण जानै है और विषयों की ईश्वर से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रार्थना करै है वह पुरुष उन विषय वासनाओं करकै नानाप्रकार की योनियों में जन्म लेकर विषयों को भोगै है और जिस पुरुष की विषयों में प्रवृत्ति नहीं होय है उस पुरुष की सम्पूर्ण वासना यहीं लीन होजाय हैं अन्त में ब्रह्मभाव को प्राप्त होय है इत्यादि श्रुतियों कें अनुसार शोककर उनके दुःखों की निवृत्ति के अर्थ चित्तशुद्धिपूर्वक भगवद्भक्ति का उपदेश करते हुए वेद स्तुति करैं हैं—

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमो ऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः। असुतृपयोगिनामुभयतो ऽप्यसुखं भगवन्ननपगतांतकादनधिरूढपदाद् भवतः ॥ २६ ॥

अन्वयः—(हे भगवन्!) यदि यतयः (अपि) हृदि (स्थिताः) कामजटाः न समुद्धरन्ति (तर्हि) असताम् (तेषाम्) हृदि गतः (अपि भवान्) अस्मृतकण्ठमणिः (इव) दुरधिगमः असुतृपयोगिनाम् (तु) अनधिरूढपदात् अनपगतान्तकात् भवतः उभयतः अपि असुखम् (एव भवति) २६

अर्थः—हे भगवन्! यदि सन्यास आश्रम के धारण करनेवाले भी अपने हृदय के विषय स्थित कामवासनाओं को नहीं दूर करते हैं तौ मलिन चित्तवाले तिन संन्यासियों के हृदय में स्थित भी आप भूले हुए कण्ठ के मणि की समान अति कठिनता से भी नहीं प्राप्त होते हो केवल इन्द्रियों को तृप्त करनेही के अर्थ सन्यास धारण करनेवाले तिनको आपके पदको न प्राप्त होने के कारण कालरूप जो आप तिन आपके सकाश से इस लोक और परलोक दोनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थान में दुःखही होता है (अर्थात् हे भगवन्! यदि सन्न्यास को धारण करकै किसी प्रकार वाहर की वृत्ति से स्त्री पुत्रादि के प्रेम को छोड़कर लोकरञ्जनार्थ 'तत्वमसि' आदि वेदान्त के वाक्यों की पारायण करै परन्तु जब तक हृदय की वासना दूर न हो तबतक सन्न्यास आश्रम में रहकर भी 'जिसप्रकार कोई पुरुष कण्ठ में मणिधारण करकै भूलजाय फिर अनेक स्थानों में ढूंढ़े परन्तु मणि नहीं मिले है तिसी प्रकार उन मलिनचित्तों को हृदय में स्थित होकर भी आप नहीं प्राप्त होते हो और केवल आपकीही प्राप्ति उनको नहीं होती यही नहीं किन्तु इस लोक और परलोक में दुःखों को भी भोगते हैं क्योंकि मन में तौ यह वासना होय है कि संसार में हमारी प्रतिष्ठा होय और नाना प्रकार के भोगों को भोगैं धन पैदा करैं परन्तु संसार में अपने इस प्रकार के वर्त्ताव के प्रगट होने से डरैं हैं इसकारण तौ यहां दुःख होय है और आपकी भक्ति न करने के कारण परलोक में कालरूप जो आप तिन आप के सकाश से नरकभोग की आज्ञा होने से परलोक में भी अनेक पीड़ाओं को प्राप्त होते हैं इसकारण जो पुरुष सन्न्यास लेकर भी हृदय की वासनाओं को दूर नहीं करते हैं उनका संन्यास धारण करना केवल आडम्बर मात्रही है। सोई श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में अर्जुन के प्रति कहा है "कर्म्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते" जो पुरुष हस्तचरणादि कर्म्मेन्द्रियों को वश में करके भी विषयों को मन से स्मरण करता रहै वही मूर्ख मिथ्याचार (पाखण्डी) कहावै है" और जो पुरुष संन्यास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आश्रम को धारण करकै मन की वासनाओं को दूर कर भगवद्भक्तिपूर्वक ज्ञान की प्राप्ति करते हैं वह पुरुष वहुत काल पर्य्यन्त ब्रह्मालोक में वास करकै ब्रह्म के विषैं लीन हो जाते हैं सोई श्रुति में भी कहा है "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्न्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वास्ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे" वेदान्त के विचार से सत् असत् पदार्थों का विचार कर संन्यासयोग करके मनकी वासनाओं को दूर करनेवाले संन्यस्त प्रारब्धकर्म्म का नाश होने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं फिर मुक्त हो ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

अवतरणिका—ऊपर की श्रुति में ऐसा वर्णन किया है कि जो पुरुष वाहर की वासनाओं को त्यागकर भी भीतर मनकी वासनाओं का त्याग नहीं करते हैं उन पुरुषों को कदापि भगवत् प्राप्ति नहीं होती है और बारम्वार संसार में जन्म लेकर दुःखों को प्राप्त होते हैं। अव जो पुरुष वाहर भीतर की वासनाओं को दूर कर परमात्मा के विषैं चित्त लगाते हैं वह पुरुष कदापि संसार के शुभाशुभ कर्म्मों से लिप्त नहीं होते हैं इस प्रकार "नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति विपापो विरजो विचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राट्" भक्तिपूर्वक ब्रह्मविचार करनेवाले पुरुष को पाप स्पर्श नहीं कर सकैं हैं और स्वयम् पापों को तरजाय है वह पापरहित रागरहित संकल्पविकल्प शून्य ब्रह्म को जानता है और ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर विराजमान होता है" इत्यादि श्रुतियों के अनुसार वर्णन करते हुए वेद स्तुति करैं हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगु-
णान्वयांस्तर्हि देहभृताञ्चगिरः । अनुयुगमन्वहं
सगुणगीतपरम्परया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्ग-
गतिर्मनुजैः ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे सगुण ! त्वदवगमी भवदुत्थशुभाशुभयोः गुणविगुणान्वयान् न वेत्ति तर्हि देहभृताम् गिरः च (न वेत्ति) यतः अनुयुगम् अन्वहम् मनुजैः गीतपरम्परया श्रवणभृतः त्वम् अपवर्गगतिः (भवसि) ॥ २७ ॥

अर्थः—हे सर्वैश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! तुमको जाननेवाला पुरुष कर्म्मफल के देनेवाले जो आप तिन आपके सकाश सैं प्राप्त हुए पूर्वजन्म के पुण्य पापरूप कर्म्मों के सुखदुःखरूप फलों को नहीं भोगैं हैं और उस ज्ञानावस्था के समय (वह आपके भक्त) मलिन चित्त देहाभिमानी पुरुषों की संसार में प्रवृत्ति कराने वाली निन्दा स्तुति रूप वाणियों को भी नहीं ग्रहण करैं हैं । क्योंकि प्रतियुग में श्रेष्ठ सम्प्रदायों के उपदेश के अनुसार प्रतिदिन श्रवण करकै हृदय के विषैं ध्यान करे हुए तुम मोक्ष के देनेवाले होते हो (अर्थात् जो पुरुष महात्मा जनों के सदुपदेश से बाहर भीतर की वास-नाओं को त्यागकर आपका ध्यान करते हैं वह आपकी भक्ति से पापों को नाश करकै फिर कर्म्मफलों को नहीं भोगते हैं क्योंकि आप उन पुरुषों को संसाररूपी बन्धन से छुड़ा देते हो और जो पुरुष मनकी बासनाओं को दूर न करकै संसार में प्रतिष्ठा और धनादि पदार्थ प्राप्त करने के निमित्त कपट से संसार में वैराग्य को प्रगट करकै इन्द्रि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यों को तृप्त करते हैं वह आत्मघाती पुरुष इस लोक और परलोक में भी बारम्बार दुःखों को प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

अवतरणिका—ऊपर की श्रुति में ऐसा कहा है कि जो पुरुष ईश्वर को जानता है उसको फिर संसार में जन्म-मरण के दुःख नहीं होते हैं तहाँ इस प्रकार शङ्का होती है कि ईश्वर तौ वाणी और मन से पर है फिर किस प्रकार ईश्वर को जानना बनैगा तहाँ "यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तराद्यावापृथिवी इमे यद्भूतं भवच्च भविष्यच्च, अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि अन्यत्र धर्मादन्यत्र धर्म्मादन्यत्रास्मात्कृतात् अन्यच्च भूताच्च भवाच्च भव्याच्च यत्पश्यसि तद्वद" हे गार्गि ! जो परमेश्वर आकाश के ब्रह्माण्डकटाह से ऊपर है जो पृथ्वी के नीचे के अण्ड-कटाह से नीचे जो पृथ्वी आकाश के मध्य मे है जो भूतकाल मे है जो वर्त्तमान है जो भविष्यकाल मे है, जो ज्ञान से पर है अविदित पदार्थों से पर है धर्म से पर है अधर्म से पर है कर्म्मों से पर है भूतकाल से पर है भविष्यकाल से पर है ऐसा जो दीखै है सोई परमेश्वर है" इत्यापि श्रुतियों के अनुसार स्थूल पदार्थों का निषेध करते करते जो शेष रहै वही भगवत् का स्वरूप है इस प्रकार समाधान करते हुए वेद स्तुति करते हैं—

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः । ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वय—(हे भगवन्!) ते अनन्ततया द्युपतयः एव (ते) अन्तम् न ययुः (इति न किन्तु) त्वम् अपि (न यासि) ननु खे रजांसि इव यदन्तरा सावरणाः अण्डनिचया वयसा सह वान्ति हिं यत् भवन्निधनाः श्रुतयः अतन्निरसनेन त्वयि फलन्ति ॥ २८ ॥

अर्थ—(हे भगवन्! तुह्मारे अनन्त होने से इन्द्रादिक देवताही तुह्मारे अन्त को नहीं प्राप्त होते हैं यह नहीं किन्तु आप भी अपने अन्त को नहीं प्राप्त होते हो । निश्चय है कि जिसप्रकार आकाश के विषैं धूलि के कणके घूमते रहते हैं तिसी प्रकार आपके विषैं एक से एक दशगुणा ऐसे सात आवरणों करकै युक्त ब्रह्माण्डों के समूह काल के वेग करके एक साथ घूमते रहते हैं निश्चय है कि इसीकारण आपके विषैं समाप्ति को प्राप्त होनेवाले वेद स्थूल पदार्थों को निषेध करके शेष रहे जो आप तिन आप के विषैं सफल होते हैं (अर्थात् हे भगवन् ! आप अनन्त हैं इसकारण इन्द्रादिक देवता भी आप के पार को नहीं प्राप्त होते हैं और इन्द्रादिक देवताही नहीं किन्तु आप भी अपने पार को नहीं प्राप्त होते हौ यहाँ शङ्का होय है कि ईश्वर तौ तीनों काल में होनेवाली सब प्रकार की बातों को जानै है इसी कारण सर्वज्ञ कहलाते हैं और जब अपने पार को नहीं जाना तौ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं होयगा तहां समाधान करै हैं कि जो वस्तु होयही नहीं है उसके न जानने से सर्वज्ञता में हानि नहीं होय है जैसे आकाशपुष्प–वन्ध्यापुत्र हैही नहीं तौ उनको यदि कोई पुरुष नहीं जानै तौ उसके ज्ञान में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होय है इसी प्रकार ईश्वर का अन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तौ हैही नहीं फिर यदि ईश्वर ने उसको नहीं जाना तौ किसी प्रकार की हानि ईश्वर की सर्वज्ञता में नहीं आती है इसकारण ईश्वर के अन्त को कोई भी नहीं प्राप्त होय है क्योंकि जिस प्रकार आकाश में अनेक धूल के कणके घूमते रहते हैं तिसी प्रकार ईश्वर के विराट स्वरूप में सात आवरण युक्त असंख्य ब्रह्माण्ड घूमते रहते हैं तहां कहते हैं कि यदि ईश्वर अनन्त है वाणी और मन से पर है तौ वेदों ने ईश्वर के स्वरूप को किस प्रकार वर्णन किया है तहां कहते हैं कि वेद भी ईश्वर को निषेध मुख करके वर्णन करैं हैं (अर्थात् अविद्योपाधिक पदार्थों को निषेध करते करते जो निर्विशेष शेष रहे है वही ईश्वर हैं इसप्रकार निश्चय कर जो पुरुष ईश्वर की अनन्यभाव से भक्ति करते हैं वह पुरुष जन्म मरणरूप संसार के क्लेशों से छूटकर परमानन्ददायक मोक्षपद को प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

इतिश्रीमहर्षिवेदव्यासकृतिश्रीमद्भागवता
न्तर्गतवेदस्तुतेर्मुरादाबादवास्तव्यपण्डि
तरामस्वरूपप्रणीता सान्वयभा
षाटीका समाप्ता ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीश्रीधरस्वामिप्रणीतावेदस्तुत्यनुकृतिः ।

जय जयाजित जह्यगजंगमावृतिमजामुपनीतमृषागुणाम् ॥ न हि भवंतमृते प्रभवंत्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव ॥ १ ॥ द्रुहिणवन्हिरवीन्द्रमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितं ॥ बहुमुखैरपि मंत्रगुणैरजस्त्वमुरुमूर्तिरतो विनिगद्यसे ॥ २ ॥ सकलवेदगणेरितसद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषिजना रताः ॥ त्वयि सुभद्रगुणश्रवणादिभिस्तव पदस्मरणेन गतक्लमाः ॥ ३ ॥ नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभिः ॥ नरहरे न भजंति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ॥ ४ ॥ उदरादिषु यः पुंसां चिंतितो मुनिवर्त्मभिः ॥ हंति मृत्युभयं देवो हृद्गतं तमुपास्महे ॥ ५ ॥ स्वनिर्मितेषु कार्येषु तारतम्यविवर्जितं ॥ सर्वानुस्यूतसन्मात्रं भगवंतं भजामहे ॥ ६ ॥ त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनं ॥ त्वदंघ्रिसेवामादिश्य परानंदं निवर्त्तय ॥ ७ ॥ त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरंतो महामुदः ॥ कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥ ८ ॥ त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह ॥ कदा ममेदृशं जन्म मानुषं संभविष्यति ॥ ९ ॥ चरणस्मरणं प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम् ॥ यथा कथंचिन्नृहरे मम भूयादहर्निशम् ॥ १० ॥ क्वाहं क्षुद्याद्यादिसंरुद्धः क्व च भूमन्महस्तव ॥ दीनबंधो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश ॥ ११ ॥ मिथ्यातर्कसुकर्कशेरितमहावादांधकारान्तरभ्राम्यन्मंदमतेरमंदमहिमंस्त्वज्ज्ञानवर्त्मास्फुटं ॥ श्रीमन्माधव वामन त्रिनयन श्रीशंकर श्रीपते गोविन्देति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुदा वदन्मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम् ॥ १२ ॥ यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत्स्वतः ॥ सदाभासमसत्यस्मिन्भगवंतं भजाम तं ॥ १३ ॥ तपंतु तापैः प्रपतंतु पर्वतादटंतु तीर्थानि पठंतु चागमान् ॥ यजंतु यागैर्विवदंतु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरंति ॥ १४ ॥ अनिन्द्रियोऽपि यो देवः सर्वकारकशक्तिधृक् ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वसेव्यं नमामि तम् ॥ १५ ॥ त्वदीक्षणवशक्षोभमायाबोधितकर्मभिः ॥ जातान् संसरतः खिन्नान्नृहरे पाहि नः पितः ॥ १६ ॥ अन्तर्यंता सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या युक्त्या चैवमेवावसेयः ॥ यः सर्वेशः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमंतं तं चेतसैवावलंबे ॥ १७ ॥ यस्मिन्नुद्यद्विलयमपि यन्भाति विश्वं लयादौ जीवोपेतं गुरुकरुणया केवलात्मावबोधे ॥ अत्यंतांतं व्रजति सहसा सिन्धुवत्सिन्धुमध्ये मध्ये चित्रं त्रिभुवनगुरुं भावये तं नृसिंहं ॥ १८ ॥ संसारचक्रक्रकचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम् ॥ कथंचिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकं ॥ १९ ॥ यदापरानन्दगुरो भवत्पदे पदं मनो मे भगवँल्लभेत ॥ तदा निरस्ताखिलसाधनश्रमः श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः ॥ २० ॥ भजतो हि भवान्साक्षात्परमानन्दचिद्धनः ॥ आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदारसुतादिभिः ॥ २१ ॥ मुंचन्नंग तदंगसंगमनिशं त्वामेव संचिंतयन्सन्तः संति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन् ॥ नित्यं तन्मुखपंकजाद्विगलितं त्वत्पुण्यगाथामृतस्रोतःसंप्लवसंप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत् ॥ २२ ॥ उद्भूतं भवतः सतोऽपि भुवनं सन्नैव सर्पः स्रजः कुर्वत्कार्यमपीह कूटकनकं वेदोऽपि नैवं परः ॥ अद्वैतं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तव सत्परं तु परमानंदं पदं तन्मुदा वंदे सुन्दरमिंदिरानुव हर मा मुंच मामानतम् ॥ २३ ॥ मुकुटकुंडलकंकणकिंकिणीपरिणतं कनकं परमार्थतः ॥ महदहंकृतिखप्रमुखं तथा नरहरेर्न परं परमार्थतः ॥ २४ ॥ नृत्यंती तव वीक्षणांगणगता कालस्वभावादिभिर्भावान्सत्वरजस्तमोगुणमयानुन्मीलयंती बहून् ॥ मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं संमर्दयन्त्यातुरं माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वामेव तां वारय ॥ २५ ॥ दंभन्यासमिषेण वंचितजनं भोगैकचिन्तातुरं संमुह्यन्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लेशैराकुलम् ॥ आज्ञालंघिनमज्ञमज्ञजनतासम्माननासन्मदं दीनानाथ दयानिधान परमानंद प्रभो पाहि माम् ॥ २६ ॥ अवगमं तव मे दिश माधव स्फुरति यन्न सुखासुखसंगमः ॥ श्रवणवर्णनभावमथापि वा नहि भवामि यथा विधिकिंकरः ॥ २७ ॥ द्युपते विदुरंतमनंत ते न च भवान्न गिरः श्रुतिमौलयः ॥ त्वयि फलंति यतो नम इत्यतो जय जयेति भजे तव तत्पदम् ॥ २८ ॥ ॥ इति श्रीश्रीधरस्वामिप्रणीतवेदस्तुत्यनुकृतिः समाप्ता ।

हरिप्रसाद भगीरथ

ठि० कालकादेवीरोड़ रामवाड़ी

मुंबई.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुद्धिपत्रम्

पृष्ट.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१	२	श्रीमद्भागवत्.	श्रीमद्भागवत.
"	६	श्रीमद्भागवत्त.	श्रीमद्भागवत.
२	२	करी.	करा.
८	१६	श्रीमद्भागवत्.	श्रीमद्भागवत.
९	६	"	"
"	९	"	"
"	१२	"	"
"	१८	जिसी.	जिस.
"	२३	श्रीमद्भागवत्.	श्रीमद्भागवत.
१०	१	वैवाग्य.	वैराग्य.
"	१४	है.	हैं.
"	२०	के.	का.
१२	२०	बोधकः	बे.धक.
१६	४	जे हैं	जे हैं ते
१७	३	स्व ध.म.	स्वधाम.
"	११	समुद्रको.	समुद्रमें.
"	१७	प्राप्ती.	प्राप्ति.
३८	६	बांधने.	बांधते.
"	१९	पुराणाम्.	पुराणम्.
४०	१२	करना.	करना चाहिये.
४५	२४	भागों.	भोगों.
५०	२३	थन्तु मति.	यन्तुमति.
५२	३	आआवश्यक.	आवश्यक.
"	६	स्त्री.	स्त्री.
"	१३	अनुसास्त्री.	अनुसार स्त्री.
५३	१४	अवतरन्.का	अवतरणिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri